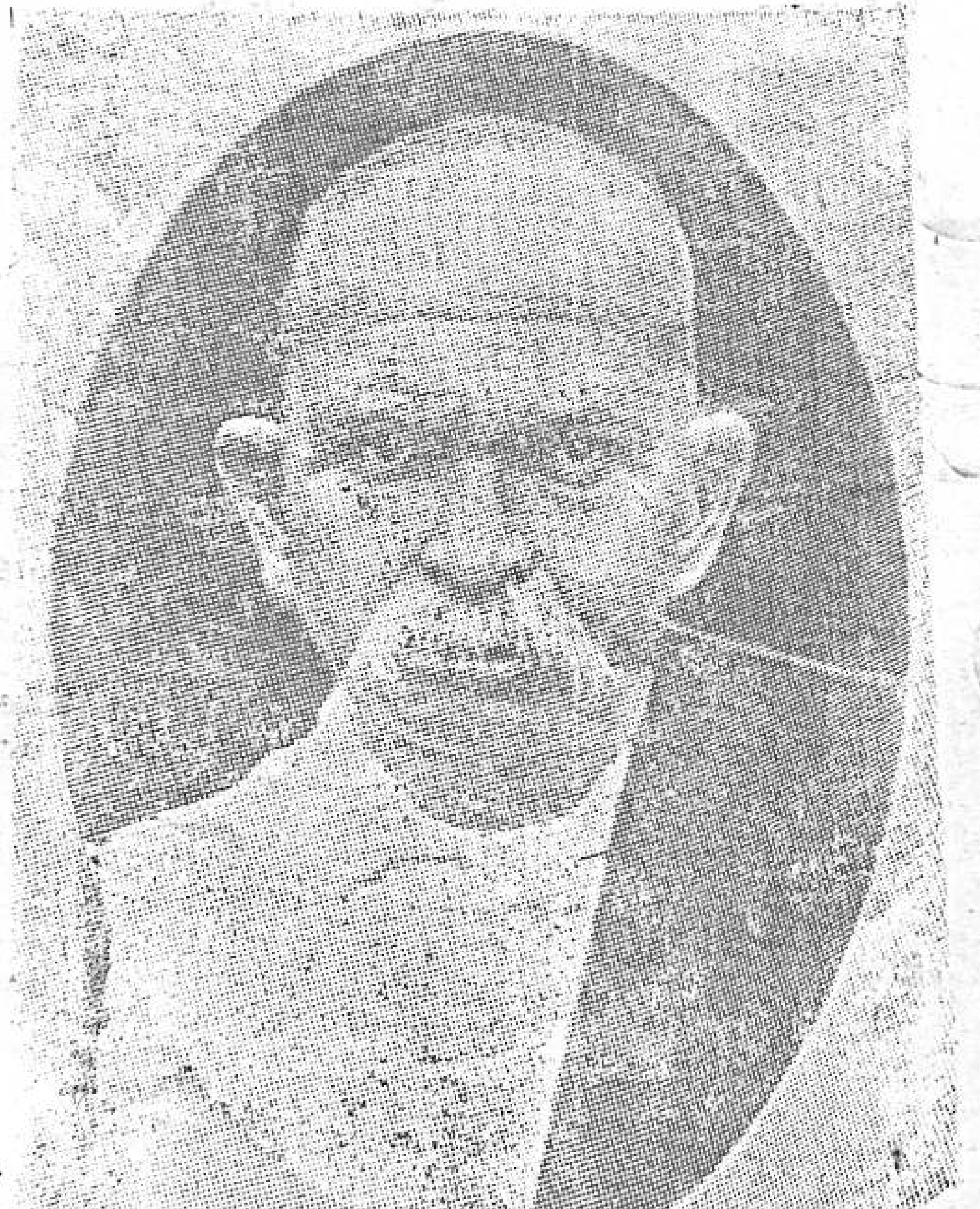
गुरु बिन ग्यान न उपजै, गुरु बिन मिलै न भेद।
गुरु बिन संशय न मिटे, जय जय जय गुरुदेव ।।



श्री हज़ूर शिवब्रतलाल जी वर्मन (दाता दयाल)

मासिक—

मानव मन्दिर

संरक्षक :
परम दयाल पं० फकीरचन्द जी महाराज

सम्पादक :
सेठ दुर्गादास जी

३	मई १९७६	संख्या १

॥ राधास्वामी ॥

प्राक्कथन

कर्मभोग था उस मालिक को इच्छा किसी वस्तु की खोज में मैं दाता दयाल महर्षि श्री शिवब्रतलाल जी महाराज के चरणों में पहुंचा। यदि मुझे ज्ञात होता कि मुझे संतमत की शिक्षा मिलनी है तो मैं कभी उनके पास न जाता क्योंकि संतमत में सभी मतों, अवतारों और ऋषियों का खंडन था। मैंने प्रण किया था कि मैं संतमत को समझूंगा कि यह है क्या? समझ कर जो अनुभव करूंगा वह कह जाऊंगा। इस संतमत की सचाई का ज्ञान कराने के लिये दाता दयाल जी ने मुझे यह गुरु का काम दिया था और कहा था तुमको सच्चा सदगुरु सतसंगियों के रूप में मिलेगा। यह भी उन्होंने कहा था कि देह त्यागने के पूर्व शिक्षा को बदल जाना।

मैंने कृषक जी जैसे दूसरे कई सतसंगियों से जिन्होंने अपने अनुभव मुझसे कहे मुझको वास्तविक और सच्चे संतमत की समझ आई। यूं कहो कि

समझ ही नहीं आई। वास्तविकता की समझ आई, किन्तु जो समझ आई है उसे मैं शब्दों में वर्णन करना चाहूं तो वर्णन नहीं कर सकता, हाँ इतना संकेत करता हूं कि जिस मालिक की मैं खोज करता था उसको ढूंढता ढूंढता अपने अन्तर में मेरा अपना अस्तित्व ही समाप्त हो रहा है। मालिक जैसा है या था या होगा वह वैसा ही रहेगा, मेरा परिणाम चुप हो रहा है।

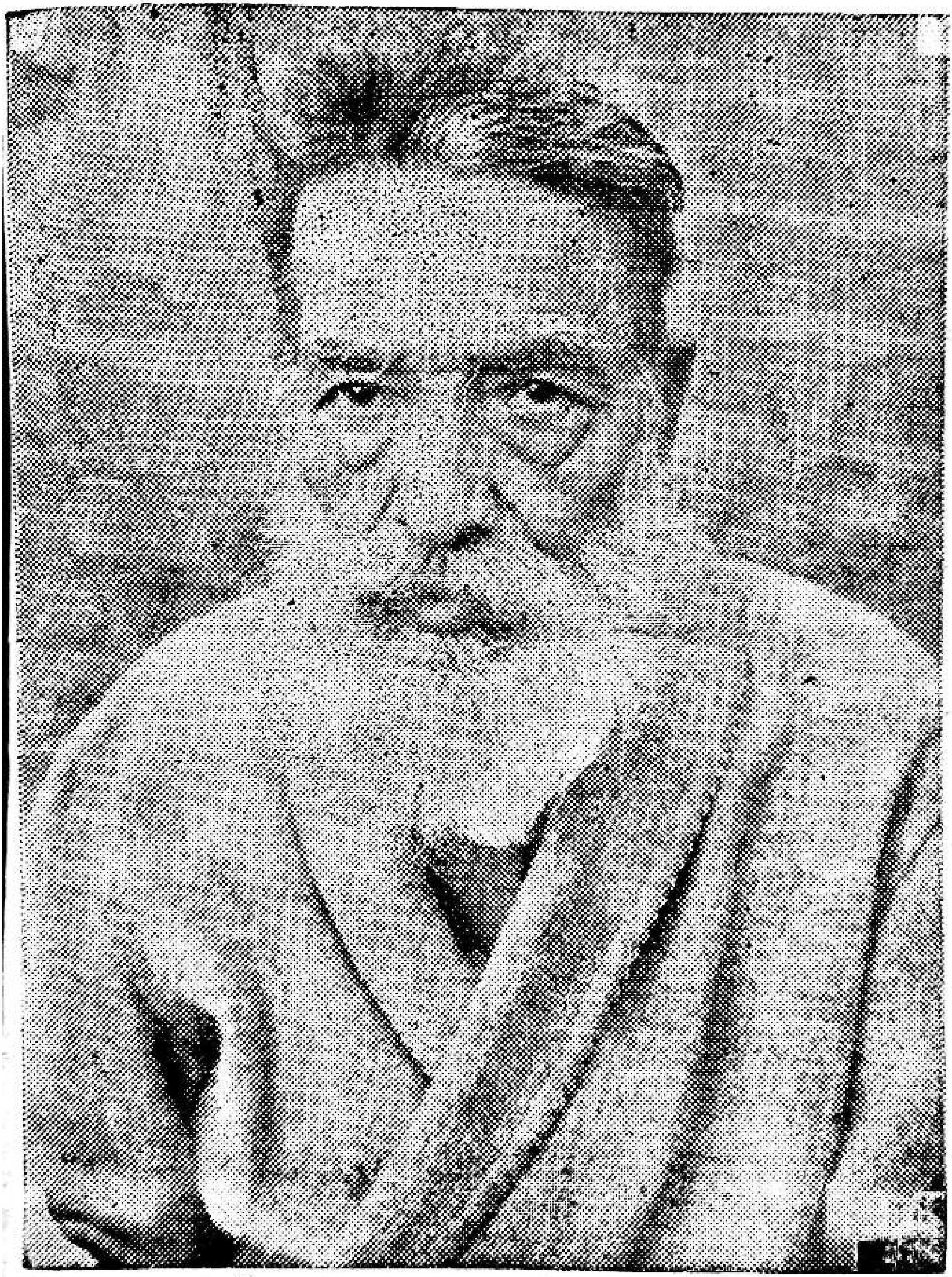
मुझ से कृषक जी, दुर्गा दास जी, कुबेरनाथ जी ने न जानते हुये अति प्यार किया है।इसलिये मैं इनकी भावना के सत्कार में कृषक जी की लेख माला, कुबेर नाथ जी का अनुभवसार तथा दुर्गादास जी के लेख आदि छपवाता रहता हूं।

इस लेखमाला को सुनकर मैंने अपने अनुभव के आधार पर श्री कृषक के सभी पुष्पों पर अपना अनुभव वर्णन किया है। मेरे विचार में यह पुस्तक सभी दृष्टी कोणों में पूर्ण है, किन्तु किनके लिये ? उनके लिये जो या तो कुछ साधक हैं या अपने मस्तक में बुद्धी रखते हैं। मैं अपने आप को भाग्यशाली समझता हूं कि अब दाता दयाल जी महाराज तो हैं नहीं इन सतसंगियों की सेवा का मुझको अवसर मिलता है।

अनुभव यह कहता है कि लाख कोई ऊंचे से उंचा चढ़ जाय, कितना ही अनुभवी ज्ञानी हो जाय, शरीर में मन में रहता हुआ प्राणी एक दूसरे का आश्रित है। जो लोग मेरा, दाता दयाल तथा कृषक जी आदि का साहित्य पढ़ते हैं उनको मैं कहना चाहता हूं सबसे उत्तम धर्म एक दूसरे की सहायता करना और सहायता लेना है इस के बिना इस संसार में किसी भी मानव का रहना कठिन है।

यह सहायता तीन प्रकार की होती है, शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक।

१० सितम्बर १९७५ —फकीर।



परमसन्त, परमदयाल
श्री पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

श्री सत्गुरु देवाय नमः

संतमत लेखमाला

अथवा

सुगमसाधन द्वारा अनमोल अनुभव

(दूसरा भाग)

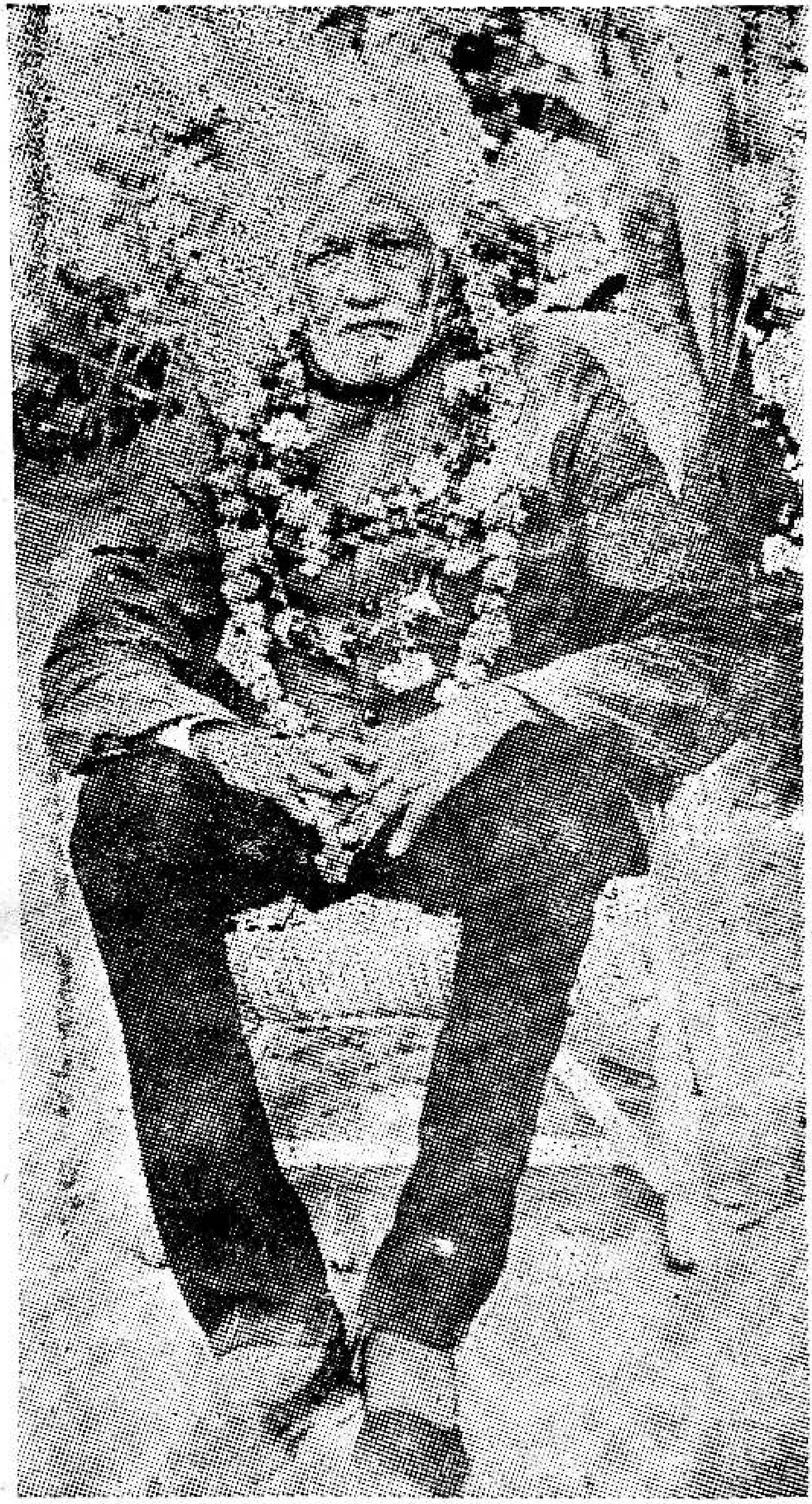
प्रस्तुत कर्त्ता :

आचार्य गोपी लाल 'कृषक'
उर्फ दयाला नन्द 'कृषक'
निवासी ग्राम खंडेहा, ज़िला अलीगढ़ (उ० प्र०)

श्री हजूर परमसंत परमदयाल पं० फकीर चन्द जी
(संचालक, मानवता मन्दिर, होशियारपुर)
का
एक किंकर शिष्य

वर्त्तमान पता :

बंगला नम्बर ४ (अ),
दी मेवाड़ टेक्सटाइल मिल्स लि०,
भीलवाड़ा (राजस्थान)।



आचार्य गोपीलाल कृषक
उर्फ दयालानन्द कृषक

भूमिका

इस पुस्तक में जो मैंने लिखा है या चित्रों द्वारा प्रदर्शित किया है वह सब मैंने अपने समझने या यों कहा जाय कि अपने आपको समझाने के लिए लिखा है व प्रदर्शित किया है। ज्ञात नहीं जो कुछ मैंने समझा है, वह कहां तक ठीक है, परन्तु जो कुछ मैंने समझा है, उससे मैं इसलिये संतुष्ट हूं कि एक ज़बरदस्त कुरेद जो मेरे बचपन से उठा करती थी कि मुक्ति वा मोक्ष क्या है और कैसे मिलती है, अब समाप्त हुई २ प्रतीत होती है।

गोपीलाल उर्फ दयालानन्द (कृषक)
बंगला नं: ४,
दी मेवाड़ टैक्सटाइल मिल्स लि०,
भीलवाड़ा।

भीलवाड़ा।
२५-८-१९७९

—०—

पुष्प नं० १

अनामी पुरुष का असली रूप

एक जिज्ञासु शिष्य ने अपने संत सतगुरु से सवाल किया कि श्री महाराज ! जिसको संतलोग अनामी पुरुष, अकाल पुरुष अथवा सत्य पुरुष कहते हैं, उसका असली रूप क्या है ? संत महोदय ने उत्तर दिया कि भाई मैंने अनामी पुरुष को साक्षात्कार कर लिया है अथवा सुरत से अनुभव कर लिया है, और मैं तुमको बतलाना भी चाहता हूं पर अफसोस यह है कि उस अनामो पुरुष के रूप को बतलाने के लिए, मुझे शब्द नहीं मिल रहे। और ना ही उसके असली रूप को किसी अनुभवी संत ने आज तक खोल कर ही बतलाया है। हां, ईशारे जरूर दिए हैं। जिनसे मैं भी सहमत हूं, वह मैं तुम्हारे सामने वर्णन करता हूं, सम्भव है तुम्हारी समझ में कुछ आ जाये। एक अनुभवी संत महोदय ने तो ऐसा अनामी पुरुष के असली रूप को वर्णन किया है कि :–

कहा कहूं बिन कही भली है.
वहां अकथ यहां कथा चली है।

और दूसरे संत महोदय फरमाते हैं कि :-

साक्षात किया जिसने उसका ।
वह ऋषि मुनि, योगी कहते क्या ।।
वह अकथ अनाम, अमाया है।
निर्गुण है, आगे कहते क्या ।।

तीसरे अनुभवी संत महोदय अनामी पुरुष के असली रूप को इस तरह वर्णन करते हैं कि :-

"रूप रंग रेखा से न्यारा, साधो ऐसा प्रभु हमारा"

एक और अनुभवी संत यह इशारा करते हैं कि :-

"वह सब में है, सब उसमें हैं,
फिर भी वो, सबसे न्यारा है।

इस पर जिज्ञासु कहने लगा कि महाराज, यह बात तो किसी साधारण बुद्धि वाले मनुष्य की समझ में भी नहीं आ सकती कि जो सब में हो, और सब उसमें हों, तो वो सबसे न्यारा कैसे रह सकता है ?

संत महोदय बोले कि देखो, इस समय दिन के १० बजे हैं, हमारे सूर्य नारायण अपनी किरणों द्वारा धूप के रूप में संसार में इस समय मौजूद हैं और

आंख उठा के देखो, अपनी जगह पर भी मौजूद है। जब संसारी (भौतिक) वस्तु में यह गुण हो सकता है तो दिव्य पदार्थ में यह गुण क्यों नहीं हो सकता। अथवा यों कहिये कि विश्व में जो कुछ भी मौजूद है, यहां तक कि जीव या सुरत भी मनुष्य के चोले में जो मौजूद है वह सब उसकी किरणें या अंश हैं। कोई कोई महापुरुष इसको उसकी बिन्दु भी बतलाते हैं। अच्छा अब आगे सुनो :-

वह सब में है, सब उसमें हैं,
फिर भी वो सबसे न्यारा है।
वह सब कुछ है और कुछ भी नहीं,
जो कुछ है. रूप निराला है।

और किसी किसी अनुभवी संत महोदय जी ने तो उसको हैरत, हैरत अथवा अचम्भा, अचम्भा कहा है। अचम्भा इसलिए भी है कि कुछ नहीं से, सब कुछ प्रकट है। मैं आशा करता हूं इन इशारों को सुनकर तुमको उसके कुछ रूप की समझ आ गई होगी।

जिज्ञासु बोला महाराज ? मेरी समझ में तो कुछ नहीं आया। बल्कि मैं तो भरम में और पड़ गया हूं। संत महोदय कहने लगे कि हां तुम्हारी समझ में

नहीं आया होगा, क्योंकि तुम उसको अपनी बुद्धि से तर्क, वितर्क करके जानना चाहते हो। जबकि वो बुद्धिगम्य नहीं है। वह तो सुरत से अनुभव करने से ही, जाना जा सकता है और उस अनुभव के प्राप्त करने के लिये कुछ प्रयास करना होता है।

यह करनी का खेल है नाहिं बुद्धि विचार॥
कथनी तज करनी करे, तब पावे कुछ सार॥

जिज्ञासु शिष्य बोला, तो महाराज उस करनी या क्रिया को ही बताया जाय, जिससे कि वो अनुभव प्राप्त हो सके।

संत महोदय बोले कि उस करनी के करने के लिए सबसे पहले तुमको बुद्धि से तर्क वितर्क करने की आदत छोड़नी पड़ेगी और किसी अनुभवी संत के वचनों पर विश्वास लाना होगा और दूसरी करनी यह करनी होगी कि पहले तुम अपने आप को जानो कि तुम क्या हो, अथवा तुम्हारे अन्दर जो मैं, मैं कर रही है, वो क्या है। क्योंकि जो अपनी मैं को जो उसके अन्दर मौजूद है, नहीं जान पाता वह उसको अथवा अनामी पुरुष को जो उसकी मैं से ज्यादा दूर है, कैसे जान सकता है। जिज्ञासु बोला

महाराज, मुझे मेरी "मैं" को जानने से उस अनामी पुरुष का अनुभव हो जायेगा यह कैसे सम्भव हो सकता है ?

संत महोदय बोले, भाई तुम उस अनामी पुरुष की ही तो एक किरण, व अंश हो, अंश को जान लेने पर उस अंशी, या भण्डार का खुद ही अनुभव हो जाता है, ठीक ऐसे ही, जैसे कि हम सब कहते हैं कि सुर्य एक प्रकाश और आग का गोला है ।

ऐसा हम क्यों कहते हैं ? इसलिए कहते हैं कि जब पृथ्वी घूमती २ सूर्य के सामने आती है तो सूर्य की किरणें पृथ्वी पर प्रकाश डालती हैं । और अगर हम उसके यानि प्रकाश के अन्दर कुछ देर को खड़े हो जाते हैं तो हमारा शरीर गर्मी महसूस करने लगता है । और हम लोग बिना सूर्य के पास जाये हुये ही कहते फिरते हैं कि सूर्य एक प्रकाश व आग का गोला है । इसी तरह हम अपनी 'मैं' को जो कि अनामी पुरुष का एक अश है के वास्तविक या असली रूप को जान जाएं तो फिर उस अनामी पुरुष के असली रूप को जो कि हमारो सुरतों का भण्डार कहा जाता है जानने में क्या दिक्कत आ सकती है ।

इसलिए संत लोग पहले अपनी 'मैं' को जानने की हिदायत करते हैं। और फरमाते हैं कि :—

"आप आप को आप पहिचानो।'
कहा और का नेंक न मानो॥

साथ ही कहते हैं कि :—

निज स्वरूप की खौज है,
तो, खोज तू घट के माहीं।
आपे में आपा मिले,
आपे माहीं समाय॥

गुरु नानक देव ऐसा फरमाते हैं कि :—

घट में है सूजत नहीं, लानत ऐसी जिन्द।
नानक या संसार को, भयो मोतिया बिन्द॥

तो जिज्ञासु बोला महाराज, इस मेरी 'मैं' को मैं कैसे जानू, यह बताने की दया करें। संत महोदय बोले देखो, तुम्हारी 'मैं' अनामी पुरुष का एक अंश है। (रचना के क्रम में जिसकी चर्चा अगले पुष्प में की गई है) तुम्हारी 'मैं' यानी सु त यानी उस अंश के ऊपर एक भान बोध की चैतन्यता का लेप चढ़ जाने के कारण तुम चैतन के बुलबुले बन गये हो, और ठीक उसी तरह जिस तरह कि हवा के एक अंश पर पानी का लेप चढ़ जाने से पानी का बुलबुला बन जाता है

और हवा के झोंके के साथ या पानी की लहरों के साथ वह पानी का बुलबुला इधर उधर खेलता, घूमता फिरता है। उसी तरह तुम चैतन का बुलबुला बन कर, संसार में खेलते फिरते हो, यानी जन्मते, मरते रहते हो, नाना प्रकार के कर्म करते रहते हो और दु:ख सु:ख उठाते रहते हो। और जब पानी के बुलबुले के ऊपर पानी का चढ़ा हुआ लेप उतर कर पानी में मिल जाता है, और हवा में हवा मिल जाती है, उसी तरह तुम्हारे चैतन के बुलबुले यानी 'मैं' पर चढ़ा हुया, चैतनता का लेप, गल कर उतर जाता है, तो वह अनामी पुरुष का अंश, अपने भण्डार में जा मिलता है अथवा जन्म मरण के खेल से रहित हो जाता है। संत लोग जो साधन करते हैं, या कराते हैं, जिसे वे सुरत शब्द योग या नाम की भक्ति कह कर पुकारते हैं, और जिसकी चर्चा पूरी तरह से संतमत लेखमाला के प्रथम भाग के ३,४ व ५ पुष्पों में की गई है, पढ़िये। और यदि आपको जीवन मरण से रहित होने की उत्कठ अभिलाषा है तो साधन करके चैतन के बुलबुले से, चैतनता के लेप को उतार कर, अनामी पुरुष के भण्डार में समा जाओ

इस समझाने का नाम ही, मुक्त अवस्था या मोक्ष कहलाती है। लेकिन याद रहे कि यह उत्कठ अभिलाषा जन-साधारण के हर व्यक्ति के अन्दर नहीं पाई जाती। यह अभिलाषा तो लाखों में एक या कहिये करोड़ों में एक व्यक्ति में ही पाई जाती है।

अगले पुष्प में विश्व की रचना तथा उस रचना के सिल-सिले में, अनामी पुरुष का अंश किस तरह चैतन का बुल-बुला बन जाता है और फिर कैसे इस चेतनता को उतार कर उस अनामी पुरुष के भण्डार में मिल जाता है, की चर्चा की जायेगी। वास्तव में तो हम सब वो दूसरी दिखाई देने वाली या भान बौध होने वाली वस्तुएं, सब उसी अनामी पुरुष की भिन्न भिन्न अवस्थाऐं हैं। एक संत महोदय फरमाते हैं कि :—

तू और नहीं, मैं और नहीं, वह और नहीं, यह और नहीं,
तू ही जल है, तू ही थल है, तू ही नभ है, तू ही बल है।
तू ही नल है, तू ही कल है, तू ही घंन्टा है पैहरो पल है।
तू ही बिन्दु, तू ही सिन्धु, तू ही रवि है, तू ही इन्दु॥
तू ही मुसलिम, तू ही जैनी, तू ही सिख है, तू ही हिन्दु।
हैं सभी अवस्था, भेद तेरे, तू और नहीं, मैं और नहीं॥
वह और नहीं यह और नहीं॥

पुष्प नं० २

विश्व की रचना

मैंने यानी दयालानन्द कृषक ने, जो निज साधन कर अनुभव प्राप्त किया है, तथा सन्तों की वाणियों से जाना है अब तक के विज्ञान (रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, बनस्पति शास्त्र व भूगर्भ शास्त्र और शरीर की रचना इत्यादि) द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया है, उन सबके आधार पर विश्व की रचना के विषय में जो कुछ लिखने का साहस करता हूं, दावा नहीं कि इस विषय में जो कुछ मैंने समझा और लिखा है वह रूपये में सौलह आना ठीक ही है। वास्तव में तो मैंने जो कुछ लिखा है या चित्रों द्वारा प्रदर्शित किया है वह स्वयं को समझाने के लिये है।

संसार में अब तक जितने भी सन्त, परम सन्त, योगी ऋषि, मुनि या पीर पैगम्बर हुए हैं सभी ने यह तो स्वीकार किया है कि, इस विश्व की रचना का कोई न कोई आधार अवश्य है परन्तु किसी ने यह नहीं बतलाया कि विश्व को रचना का जो आधार है, वह है क्या पदार्थ ? हां ! संतजन, जो सुरत शब्द योग का या नाम की भक्ति का साधन करते हैं उन्होंने

इतना अवश्य महसूस किया है कि वह पदार्थ चाहे जो कुछ भी हो, चाहे जैसा भी हो, वह कांपता थर्राता रहता है। सुरत शब्द योग का साधक, जब सच्च खण्ड यानी आत्म अवस्था से ऊपर अलख, अगम में जाने की कोशिश करता है उस समय पर उस पदार्थ के कांपने या थर्राने का अवश्य अनुभव करता है। जब मैं उस अवस्था में था, मुझे भी इस पदार्थ के कांपने या थर्राने का अनुभव हुआ था, और इसकी पुष्टि या ताईद श्री हज़ूर परम दयाल जी महाराज ने भी अपने प्रवचनों में और मुझे लिखे पत्रों में की है। मेरे विचार में बस यह कम्पन या थर्राना ही इस विश्व रचना का मुख्य आधार व मुख्य कारण है उस पदार्थ के कांपने थर्राने के कारण उसमें हिल्लौर (vibration) उठती रहती है अथवा हरकत होती रहती है और हरकत होने के कारण शब्द (Sound) पैदा होती रहती है। और उस अनामी पुरुष के अन्दर, जोकि अकह, अपार अगाध व अनामी कहलाता है उसमें इन हिल्लोरों से निकले हुए शब्द का एक मंडल बन जाता है, जिसको संतलोग चेतन देश के नाम से

पुकारते हैं। अनामी पुरुष के अन्तर चेतनता नहीं होती बल्कि चेतनता शब्द की लहरों या हिल्लोरों में पैदा होती है। यह चेतनता, चेतन देश में दो प्रकार की होती है।

(१) बोधनात्मक चेतनता अथवा महसूस करने को ताक़त।

(२) क्रियात्मक चेननता अथवा वह चेतनता जो इस शब्द के कणों में, रसायनिक गुणों और भौतिक गुणों के रूप में रहती है। ये शब्द के कण वास्तव में ५ तत्वों यानी आकाश, अग्नि, वायु जल और पृथ्वी के ही कण होते हैं जो इस चेतन देश में रहते हैं। इन कणों के स्वभाविक गुण ही क्रियात्मक चेननता कहलाते हैं। आगे चलकर यह कण भिन्न भिन्न मात्राओं में मिलकर, विश्व में पाये जाने वाले, सभी पदार्थों की रचना करते हैं। इस रचना की क्रिया को शास्त्रों में 'पंची कारण' क्रिया का नाम दिया हैं। इस प्रकार इस शब्द द्वारा सारे विश्व की या माया की रचना होती है व होती रहती है।

शब्द ने रची त्रिलोकी सारी।
शब्द से माया उपजी भारी।

अब सुरत की रचना कैसे हुई ? यह प्रकृति का नियम है कि जो चीज जिसमें से निकलती है या जिससे पैदा होती है, वे दोनों ही एक दूसरे की तरफ खिचती रहती हैं। इसी नियमानुसार अनामी पुरुष चेतन देश की तरफ खिचता रहता है। और इस खिचाव के कारण एक धार, अनामी पुरुष में से फूट कर, चेतनदेश में पहुंच जाती है। और वहां पहुंच कर इस धार या किरण पर बोधनात्मक चेतनता का अथवा भान बोध का एक लेप चढ़ जाता है, और ये दोनों मिल कर चेतनता का बुलबुला यानी हमारी सुरत या 'मैं' बन जाती है। और इस भान बोध के कारण बाहर की चीजों का बोध करने लगती है। इस तरह यह बाहर मुखी बन जाती हैं।

सुरत शब्द दोऊ, धार समान।
पुरुष अनामी के यह प्राण॥

और इस प्रकार इस विश्व की रचना में अथवा सृष्टि की रचना में, प्रकृति यानि माया और सुरत यानी जीव की रचना हो जाती है, और इस रचना का नाम सिफ़ात और अनामी पुरुष का नाम ज़ात पड़ जाता है। परन्तु यह याद रहे कि ज़ात से

अलग नहीं होती जैसे खूबसूरत से खूबसूरती अलग नहीं होती। इस शब्द के मंडल को या चेतन देश को महाकारण प्रकृति कहा जाता है। इस चेतन देश में भी शब्द व प्रकाश के भेद के अनुसार दो प्रदेश होते हैं। ऊपर के देश को सन्तों ने अगम लोक कहा है ओर नीचे के प्रदेश को अलख लोक कहा है। देखो आगे दिया हुआ काल्पनिक चित्र। इस महाकरण प्रकृति यानि चेतन देश से भी एक धार फूट कर चलती है जो आगे जाकर प्रकाश या आनन्द का देश बनाती है जिसे सन्तों ने सच्चखंड कहा है, और कोई कोई लोग इसे सत्तलोक भी कह देते हैं। इसके बनने पर सुरत ने प्रकाश को महसूस किया और प्रकाश के देश में आई और दूसरा खोल प्रकाश या आत्मा का और चढ़ गया। इस देश के कारण प्रकृति और इसमें आई हुई सुरत को कारण शरीर कहते हैं। इस सच्च खंड या सतलोक में भी शब्द और प्रकाश के भेद अनुसार दो प्रदेश होते हैं। ऊपर के प्रदेश को संतलोग सत्‌लोक कहते हैं और नीचे के देश को भंवरगुफा कहते हैं। (देखो आगे दिया हुआ काल्पनिक चित्र)

इस आनन्द या प्रकाश देश से भी अपनी बारी पर एक धार और फूटती है जो इन्हीं मंडलों के अंदर एक और मंडल बनाती है जिसका नाम सन्तों ने ब्रह्मदेश कहा हुआ है। यह देश संकल्पों का अथवा विचारों का या कहा जाय तो मन का देश होता है। इस देश में सुरत आकर एक और विचारों या मन का लेप ओढ़ लेती है वह देश सूक्ष्म प्रकृति कहलाती है और इसमें आई हुई सुरत सूक्ष्म शरीर कहलाती है। इस ब्रह्म देश में भी शब्द व प्रकाश के भेदानुसार चार प्रदेश होते हैं। सन्तों ने सबसे ऊपर के प्रदेश को महासुन्न और इससे नीचे वाले प्रदेश को सुन्न प्रदेश और इससे नीचे वाले प्रदेश को त्रिकुटी और त्रिकुटी से नीचे वाले प्रदेश को सहसदल कमल कहा है। (देखो आगे दिया हुआ काल्पनिक चित्र)

अब इस ब्रह्मदेश से एक धार अपनी बारी में और फूट निकलती है और इन मण्डलों के अन्दर ही एक और मंडल बनाती है जो माया देश कहलाता है और सब वस्तुएं इसमें स्थूल रूप धारण कर लेती हैं, और इस मण्डल में आई हुई हमारी सुरत भी स्थूल शरीर धारण कर लेती है। और इस शरीर में आकर

फंस जाती है। इस विश्व की रचना का आगे चित्र बनाकर दिखाया गया है और इस देश में सुरत स्थूल शरीर धारण कर उस स्थूल को ही "मैं" समझने लगती है और असली रूप को भूल जाती है। और बार २ जन्म लेती, और नाना प्रकार के कर्म करती और दु:ख सुख उठाती फिरती है। या कहिए कि हम इस माया देश में फंस जाते हैं। जब हमारी सुरत नाना प्रकार के दु:ख व क्लेश सहते सहते घबरा जाती है वो फिर उस सुरत को सौभाग्यवश अपने असली देश अथवा अनामी देश में वापस लौटने की अभिलाषा पैदा होती है और जब यह अभिलाषा उग्ररूप धारण कर लेती है तो *Demand and Supply* के सिद्धान्त के अनुसार कोई ऐसा सत्तगुरु मिल जाता है जो उस सुरत को अपने धाम वापस होने का तरीका बतलाता है और जो सुरत उस तरीके व साधन को अपना लेती हैं वह सुरत देर या सवेर एक जन्म में या कुछ जन्मों में अपने अनामी धाम में वापस पहुंच कर हमेशा के लिये जन्म मरण से रहित हो जाती है।

इसके लिये सतगुरू जो तरीका बतलाता हैं वह इस पुस्तक के पहले भाग के पुष्प नं: ३-४ व ५ में

पढ़िये तथा लाभ उठाइये। सूक्ष्म में वह तरीका यह होता है कि :—

कविता

निकल तन से, फिर तू मन से निकल बे ख्याली में आ।
आत्मा के निकट अज़ खुद, पहुंचता तू जायेगा।
आत्मा में ठहर कुछ, आनन्द ले आनन्द ले।
छोड़ दे आनन्द को निज रूप दर्शन पायेगा।
आनन्द रचना में रहे, त्रिपुटी बसे आनन्द में।
भेद दे, आनन्द त्रिपुटी, निज रूप दर्शन पायेगा।
निज रूप दर्शन पायेगा, निज रूप दर्शन पायेगा।
शान्ति का दौर तुझको दौड़ कर खुद आयेगा।
अकथ ब्रह्मानन्द का, अनुभव तुझे हो जायेगा।
इस तरह तू लौट कर, निज ज़ात में रल जायेगा।

आईये अब विचारें हमारी मैं या सुरत क्या निकली? हमारी मैं उस अनामी पुरुष का एक अंश या किरण है जो अनामी धाम से चलकर माया देश में पहुंची हुई है और माया देश तक पहुंचने में उसे कई मण्डलों यानी देशों में होकर गुजरना पड़ा और जिन जिन देशों में होकर गुजरी उन्हीं उन देशों का प्रतिविम्ब अथवा लेप उस पर चढ़ता गया। जब वह अनामी पुरुष की भी धार या किरण चेतन देश में होकर गुजरी तो उस पर बोद्धनात्मक चेतनता

यानी महसूस करने की ताकत का लेप चढ़ गया। और इस तरह हमारी सुरत चेतन का बुलबुला बन गई। वहां से चलकर जब प्रकाश या आनन्द के देश में आई तो उस चेतन के बुलबुले पर एक प्रकाश अथवा आत्मा का लेप और चढ़ गया, और इस तरह हमारी मैं या सुरत अब जीव आत्मा या कारण शरीर बन गई। इस कारण शरीर को लेकर जब हमारी मैं ब्रह्मदेश में होकर गुजरी तो उस पर विचारों अथवा अन्तःकरण का एक तीसरा लेप चढ़ गया अथवा हमारी मैं सूक्ष्म शरीर बन गई। और जब इस सूक्ष्म शरीर को लेकर हमारी मैं, जब माया देश या स्थूल जगत में आई, तो उस पर यह स्थूल शरीर का चोला और चढ़ गया। आगे दिये हुए कल्पित चित्र में अनामी पुरुष को हरे रंग से प्रदर्शित किया गया है तथा उसमें से एक हरे रंग की धार निकल कर चेतन देश व दूसरे देशों का लेप उस पर चढ़ता गया जो कि हरे रंग की धार पर प्रदेशों के रंगो के रूप में सुरत पर चढ़े हुए दिखालाये गये हैं। लेकिन ये सब रंग उन धाम या प्रदेशों के असली रंग नहीं है सिर्फ समझने व समझाने को ये

रंग दिये गये है। साथ ही जो सुरत साधन करने लगती है और अनामी पुरुष की तरफ लोटती है उस पर से वह लेप उतरते हुए दिखाये गये हैं और जब सब लेप उतर जाते हैं और सुरत निरत हो जाती है वह अवस्था अकह अवस्था कहलाती है और अकह अवस्था को प्राप्त कर सुरत अनामी धाम में रल जाती है। और इस तरह हमारी मैं या सुरत जो कि अनामी पुरुष की अंश है अब स्थूल चोला को पहन कर नर का रूप बन गई, और इस स्थूल शरीर को ही अपनी मैं समझने लगी और अपने असली रूप को भूल गई। अब जिनको अपनी मैं का असली रूप जानना होगा, उस मैं या सुरत को उस पर चढ़े हुए सभी लेपों को उतार कर फैंकना होगा, और तब हम अपनी मैं का असली रूप जानने योग्य होगें। और इस काम के लिए किसी सन्त अथवा गृहस्थी सतगुरु की शरण में जाना होगा। यह सम्भव है ऊपर बयान किए हुए शब्दों से यह समझ कि हमारी मैं क्या है? हमारी समझ में आ सकती है, पर पूरा विश्वास तो उसी को होगा जो सुरत शब्द योग अथवा नाम की भक्ति का

साधन कर, साधन करते हुए, अन्तिम अवस्था, जिसे सन्तों की भाषा में अकथ अवस्था कहते हैं और साधकों की भाषा में जिसे अशब्द गति कहते हैं, प्राप्त कर लेगा। और :—

यह करनो का भेद है नाहिन बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करे, तब पावे कुछ सार।

इस अकह या अशब्द गति अवस्था का ही दूसरा नाम है "शान्ति" अवस्था। अथवा यों कहिए कि हमारी मैं का असलो स्वरुप शान्ति है। और उस भंडार या अनामी पुरुष, जिससे यह मैं निकली है, उसका भी असली स्वरुप शान्ति ही है। शान्ति कहाँ होतो है जहां कुछ भी नहीं होता जिसे शून्य अवस्था या खामोशी भी कहा जा सकता है, इसलिए आदि सन्त, सतपुरुष, कबोर साहब ने उस अनामी पुरुष का स्वरुप इस तरह वर्णन किया है कि :—

जहां पुरुष तहवां कुछ नाहीं,
कहे कबीर हम जाना।
हमरी सैन लखै जो कोई,
पावै पद निर्वाना।

अब एक सवाल दूसरे मत धर्मावलम्बी अवश्य कर सकते है कि सन्तो ने तो उसे शान्ति स्वरूप बताया है और दूसरे मत वाले उसको कोई चेतन स्वरूप आनन्द स्वरुप कोई प्रकाश स्वरुप मानते हैं क्या उनका ऐसा मानना ठीक नहीं, और हिन्दू शास्त्रों ने तो उसको हज़ार नाम वाला माना है और एक पौथी विष्णु सहस्त्र नाम की बना दी है क्या वो भी ठोक नहीं है ? इसका उत्तर हां और नां दोनों हैं। नां तो इसलिए है कि जब वह अनामी पुरुष है तो उसका नाम हो ही क्या सकता है। वास्तव में जिन्होंने ने ये नाम दिए उनको अनामी पुरुष का अनुभव ही नहीं है। ये नाम वास्तव में विशेषण हैं। अथवा सिफात हैं और ये सब नाम, सन्त लोगों ने सार शब्द या शब्द ब्रह्म को दिये, जो कि कुल रचने वाला, पालनपोषण करने वाला और नेस्तो नाबूद (मटियामेट) करने वाला है अथवा यों कहा जाय, यह सब नाम ज़ात के नहीं, सिफात के हैं। सृष्टी की रचना अनामी पुरुष ने नहीं की। उसकी रचना, सार शब्द या शब्द ब्रह्म से हुई है। दूसरे मत वाले भी मानते हैं जैसे इसाई लोग कहते हैं कि रचना की आदि में शब्द यानी Sound थी और दूसरे मत वाले कहते

है कि रचना की आदि में प्रकाश या नूर था। हजूर संत कृपालसिंह जी ने तो अपनी पुस्तक "गुरु मुख सिद्धान्त" में इस सार शब्द या शब्द ब्रह्म को अनामी पुरुष का वायसराय या गवर्नर जनरल की संज्ञा दी है। और मैं भी इस से सहमत हूं।

व्याख्या पीछे दिये हुए काल्पनिक चित्र की :—

इस चित्र को मैं ने काल्पनिक क्यों कहा है? इसलिए कि जब से इस सृष्टी की रचना हुई है इस पृथ्वी पर मेरे जैसे नाचीज़ प्राणी की तो क्या चले, बड़े २ महात्मा, योगी, ऋषि, मुनि, पीर पैगम्बर, औलिया, विश्व में अवतार तथा सन्त और परम सन्त आए और उन सब ने अत्यन्त कोशिश, परिश्रम और यतन किए कि उनको किसी भी तरह से उस कुल मालिक जो इस सृष्टी के रचना का आधार और जिसको कोई परमेश्वर खुदा या गोड और कोई अनामी या अकाल पुरुष कहता है उसका किसी तरह भी दर्शन मिले। किन्तु आज तक कोई स्बूत नहीं मिलता कि किसी को दर्शन दिए हों या उसके रूप, रंग, आकार इत्यादि का पता लगा हो, या अनुभव हुआ हो। तो ऐसे पदार्थ का चित्र बनाना कि जिस पदार्थ को देखा न हो, काल्पनिक नहीं तो और क्या है। पर हां एक

बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सन्तों* ने उसके रंग, रूप या आकार को तो नहीं देखा पर

---

*संतजन की व्याख्या :—

संत केवल वे ही महापुरुष कहलाये जा सकते हैं या कहे जाते हैं जो संतों (संत कबीर, गुरु नानक, राधास्वामी दयाल) के बताये हुए सुरत शब्द योग का साधन करके अपनी सुरत को अकह के स्थान पर लेजाकर अनामी पुरुष का, तथा अपने आप यानी अपनी मैं का और माया के स्वरूप को पूरी तरह अनुभव कर लिया हो और तब सुरत के उत्थान होने पर अपनी सुरत को अक्सर सत्पद में टिकाये रहते हों। और इस तरह सुरत को टिकाकर जीवनमुक्त अवस्था में जन साधारण की तरह रहते हों पर ऐसे सन्तों को पहिचानना असंभव नहीं तो कठिन जरूर होता है अथवा कहिये हरेक मनुष्य इनको पहिचान नहीं सकता क्योंकि ये बिना वेश भूषा बनाये समाज के अंदर उसी तरह रहते सहते कमाते खाते रहते हैं जैसे कि एक जन साधारण मनुष्य करता है। फिर भी चूंकि सन्तों का अवतार जगत कल्याण के लिये होता है इसलिये सन्त लोग अपने प्रवचनों, लेखों तथा जीवन बीताने के आदर्श तरीके द्वारा जगत कल्याण का काम करते रहते हैं। वे लोग सौभाग्य शाली हैं जो संतों को पहिचान कर उन से सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। संत की पहिचान यह है कि :—

उधर है लीन मालिक में, इधर हम सब में रहता हो।
हमारी पीर हरने को हमारी पीर सहता हो।

अपने सुरत शब्द योग के साधन से यह पता जरूर लगा लिया है कि वह पदार्थ चाहे, कैसे ही रूप, रंग या आकार का हो वह कांपता अथवा थर्राता रहता है। अपने अनुभव के आधार पर कहता हूं कि जब सन्तमत के साधक, सोपान दर सोपान शब्द सुनते हुए व प्रकाश देखते हुए अपनी सुरत को जब सतलोक से आगे अलख, अगम में अपनी सुरत को ले जाने का साधन करते हैं तो साधक को इस कांपने या थर्राने का अहसास (भान) होता है। जब मेरी सुरत इस अवस्था में थी, मुझे भी यह कंम्पन या थर्राना, महसूस यानी भान हुया था। और इसकी पुष्टी श्री हजुर परम दयाल जी माहराज जी ने अपने किसी प्रवचन व लेख में की है और किसी किसी अनुभवी सन्त ने तो इतना लिखा है कि हमारी ज़ात यहां तक खेलती रहती है :

व्याख्या अंकों, अक्षरों व रंगों की जो
इस चित्र में दिये गए हैं।

रंग जो दिए गए हैं वे उन देशों, प्रदेशों या अनामी पुरुष इत्यादि के असली रंग नहीं हैं वे तो समझने व समझाने के लिए जैसे भी रंग मिले, हमने

इस्तेमाल किए हैं। साथ ही लोक, देश या प्रदेशों की पूरी व विस्तार किसी पैमाने पर नहीं है। वास्तव में इनका विस्तार अथवा एक दूसरे से दूरी लाखों करोड़ों मील की है जैसा कि राधास्वामी सारबचन के हिदायत नामा में बताया गया है जिस से मैं पूर्ण रूप से सहमत हूं, क्योंकि यदि एक दूसरे के नज़दीक होते तो सुरत को जल्दी ही एक लोक से दूसरे लोक में पहुंच जाना चाहिए था परन्तु एक लोक से दूसरे में पहुंचने के लिये महीनों ही नहीं सालों लग जाते हैं।

अंक नम्बर १ :—

उस अनामी अपार व अगाध पुरुष व उसके धाम को हरा रंग देकर दर्शाया है। जोकि कांपता व थर्राता रहता है। और उसके इस तरह कांपने से उसमें हिलोरें उठती हैं, लहरें पड़ती हैं और इन हिलोरें उठने के कारण उसमें हरकत होती रहती है। प्रकृति के नियम के अनुसार जहां हरकत होती है वहां शब्द प्रकट होता है। इन लहरों की हरकतों से जो शब्द प्रकट होता है वो अनामी पुरुष के दायरे में ही एक गोलाकार मण्डल बनाता है जिसको हमने

अंक नं: २ दिया है और लाल रंग देकर दर्शाया है
इसे सन्त लोग चेतन देश कहते हैं।

अंक नम्बर २ (चेतन देश) :—

इस देश को चेतन देश इसलिए कहा जात
है कि शब्द की लहरों में जो इस देश में जम
होती हैं दो प्रकार को चेतनताएं होती हैं
(१) बौद्धात्मिक चेतनता (२) क्रियात्मिक चेतनत
क्रियात्मिक चेतनता से गोचर व अगोचर सृष्टी क
रचना होती है और बौद्धात्मिक चेतनता से सुर
अथवा जीव की रचना होती है। शब्द और प्रकाश
के भेद अनुसार इस देश में दो प्रदेश होते हैं। ऊप
के प्रदेश को सन्तों की भाषा में अगम लोक औ
उसके नीचे के प्रदेश को अलख लोक कहा जाता है
इस प्रदेश में, जब शब्द में काफी गाढ़ापन आ जात
है इसमें से भी एक धार तेज़ रफतार वाली प्रकाश
के रूप में फूट निकलती है और वो चेतन देश के
दायरे के अन्दर एक दूसरा मण्डल बनाती है जिसको
हमने ३ का अंक नम्बर दिया है और इसको हमने
आसमानी रंग देकर प्रदिशत किया है। सन्तों की भाषा
में इस मण्डल को आनन्द देश कहते हैं।

अंक नम्बर ३ (आनन्द देश) :—

आनन्द देश को प्रकाश का देश व हैपने का देश भी कहा जाता है और शब्द व प्रकाश के भेद अनुसार इस देश के भी दो प्रदेश होते हैं। ऊपर के प्रदेश को सन्तों की भाषा में सतलोक, सचखण्ड या झंन्जरी दीप कहते हैं। और शास्त्रों की भाषा में कारण प्रकृति कहते हैं। और नीचे के प्रदेश को भंवर गुफा सन्तों की भाषा में कहते हैं। और यहां से ही रचना का आरम्भ होता है। ऐसा माना जाता है। इस प्रदेश में से भी एक और धारफूट निकलती है जो इस देश के अन्दर हीं एक और मण्डल या लोक बनाती है, जिसको हमने नक्शे में चार का अंक दिया है जिसे बेंगनी रंग से प्रदर्शित किया है और इसका नाम ब्रह्म देश रखा गया है।

अंक नम्बर ४ (ब्रह्म देश) :—

यह देश संकल्पों, ख्यालातों अथवा अन्तः-करण का देश कहलाता है जिस में कि मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार का समावेश होता है। इस देश के भी चार खण्ड या प्रदेश होते हैं।

सन्तों की भाषा में सबसे ऊपर के प्रदेश को महासुन्न और उसके नीचे वाले प्रदेश को सुन्न, और उससे भी नीचे वाले को त्रिकुटी व सबसे नीचे वाले प्रदेश को सहसदल कमल कहते हैं। और शास्त्रों की भाषा में इस सारे ब्रह्म देश को सूक्ष्म प्रकृति कहते हैं।

संकल्पों पर गाढ़ापन आने पर एक धार इसमें से भी फूट निकलती है और इस देश के अन्तर में भी एक और देश या मण्डल बन जाता है जिसको सन्तों की भाषा में माया देश या स्थूल जगत अथवा शास्त्रों की भाषा में स्थूल प्रकृति कहते हैं।

इस माया देश में सभी वस्तुएं स्थूल रूप धारण कर लेती हैं यहां तक कि हमारी सुरत भी स्थूल शरीर धारण कर लेती है और इस स्थूल शरीर को ही अपना असली रूप मानकर मैं, मैं करती रहती है, और जन्म मरण के चक्कर में फंस कर नाना प्रकार के कर्म करती व दुःख सुख सहती रहती है। और इस तरह से वह शब्द की धार अनामी पुरुष से निकल कर यह सारे त्रिगुनात्मक जगत की रचना करती है। जब सुरत जनमते मरते, दुःख, सुख उठाते बुरी तरह

अशान्ती का शिकार हो जाती है तब, उसकी यह धारणा बनती है कि :-

बहुत हुआ में तंग, स्वांग चोरासी लाख भरते भरते।
नाक में दम आ गया, जन्मते बार बार, मरते मरते।
लिए अनगिनत जन्म बिताऐ त्राही त्राही करते करते।
भोग, वियोग और सोग अनेकन रोगन में सड़ते सड़ते।
रहा न सर पर बाल एक भी, जम के जूत पड़ते पड़ते।
बहुत हुवा में तंग स्वांग...........

इस धारणा के बनने पर नर शरीर धारी सुरत को कुरेद (*Craving*) या खोज होती है कि अब इस जन्म मरण के चक्कर से कैसे निकला जाय और उस कुरेद को लेकर अब वह धार्मिक कथाओं, बार्ताओं को सुनने व ऐसे साहित्य को पढ़ने की कोशिश करता है कि जिसमें अध्यात्मिक ज्ञान अथवा रूहानियत और जन्म मरण से बचने का उपाय बताया गया हो। परन्तु इस साहित्य को पढ़कर और विचलित हो जाता है, क्योंकि किसी साहित्यकार ग्रन्थकार, ने तो जन्म मरण से बचने का उपाय भक्तियोग, किसी ने ध्यान योग किसी ने नमाज़, रोज़ा व कुरबानी और किसी में प्रेम योग और किसी ने सन्यास योग, और किसी ने कर्म योग या गंगा स्नान बताया हुआ है। इतनी टक्कर

खाने के बाद भी अगर उस व्यक्ति का सौभाग्य हो, तो उसको यह बात सुझाई जाती है या स्वयं सुझती है कि :—

> गुरु बिन ज्ञान न ऊपजे, गुरु बिन मिले न भेद।
> गुरु बिन संसय ना मिटे, जय जय जय गुरुदेव ॥

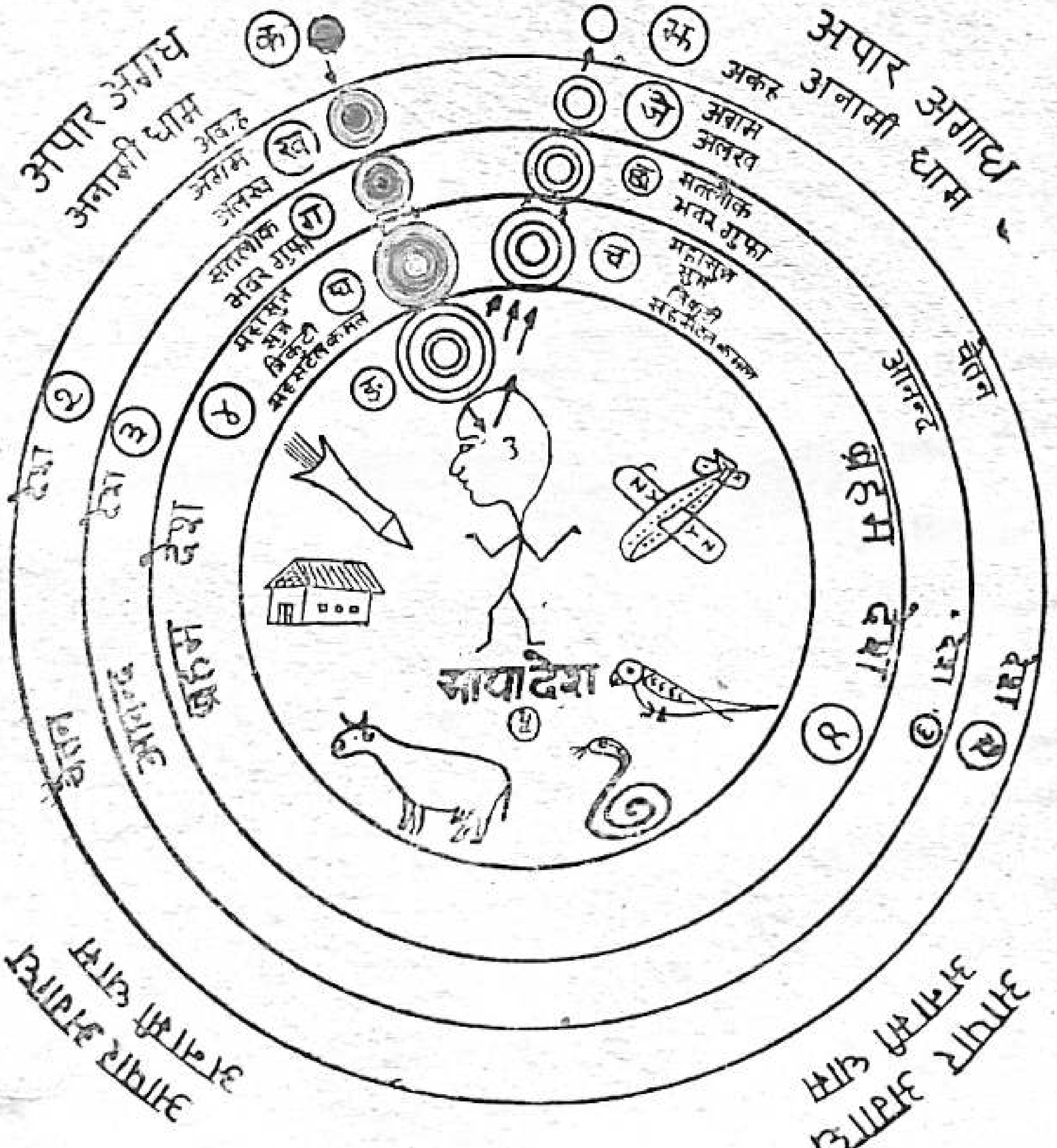
अब वो गुरु की तलाश में, यत्र, तंत्र, जहां तहां विचरता है। हिन्दु समाज में गुरुओं की बाढ़ आई हुई है और जहां तहां (खास कर तीर्थ स्थानों पर) मठ, मन्दिर, आश्रम, द्वारे, गद्दी, इत्यादि बनाकर, धन, या नाम के लोलुप गुरु बन कर भोले भाले लोगों को शिष्य बना लेते हैं। और ज्ञान की बजाय अज्ञान में फंसा देते हैं। जब मैं ऊपर बयान की हुई विचलित दशा में था, तो ऐसे अनगिनत, गुरुओं से भेंटा हुवा और कुछ से तो पाला ही पढ़ गया। और मैं भी उन नाम धारी गुरुओं के चक्कर में पढ़ उनकी विचार धारा में बहने लगा। परन्तु जिनको सौभाग्य प्राप्त होता है वह इन नकली गुरुओं के दाव पेचों को समझकर असली सतगुरु की अभिलाषा व खोज करते हैं और जब अभिलाषा उग्र हो जाती है तो रिद्धी सिद्धी (*Demand and Supply*) के सिद्धान्त अनुसार उनको

कोई न कोई वीतराग पुरुष, सन्त के रूप में, मिल ही जाता है। और वो सन्त उस अभिलाषी की लगन स्थिति परिस्थियों को देख कर जन्म, मरण से बचने का सुगम से सुगम मार्ग बता देते हैं। इतना सुगम कि जिसे हर जाति देश, मज़हब व सम्प्रदाय वाले, हर उमर और हर आश्रम वाले गृहस्थ में रहते हुए भी आसानी से कर सकते हैं। और वो ऊपाय यह है कि पहले उसको वो यह यकीन दिलाते हैं कि तू उस अनामी पुरुष का जिसको लोग कुल मालिक या आधार कहते हैं। तू एक बाहरमुखी हुआ, हुआ अथवा बहका हुवा एक छोटा सा अंश या किरण है और रचना के सिलसिले में, रचना के आधार चेतन देश में आकर, एक चेतन का बुलबुला बन गया है। जिसको संत लोग, सुरत व शास्त्र जीव कहते हैं। सुरत के स्वभाविक गुणों में से एक यह स्वभाविक गुण है कि जब सुरत बाहरमुखी हो जाती है तो बाहर की तरफ माया देश की ओर ही दौड़ती चली जाती है जब तक कि कोई उसको अन्तरमुखी न बना दे। और जब वह अन्तर मुखी हो जाती है तो वह अन्दर की ओर यानि अनामी धाम की ओर बढ़ती

जाती है। और अनामी धाम में देर या सवेर पहुँच कर, अपनी ज़ात अनामी पुरुष में रल जाती है। ऐसे नहीं जैसे कि बेरों में गुठली बल्कि ऐसो रल कर घुल मिल जाती है जैसे कि नदियों का पानी सागर में मिलकर एक ज़ात हो जाता है। तुम या तुम्हारी सुरत जब अनामी पुरुष से एक धार की शक्ल में फूटकर, चेतन देश में आए और बाहरमुखी होने के कारण चेतन देश से आनन्द देश में और आनन्द देश से ब्रह्म देश, और ब्रह्म देश से माया देश में आकर यह मनुष्य का चोला ओढ़कर इस माया देश में आकर फंस गये हो, और तुम जिन २ देशों में गुज़र कर आए हो, हरेक देश का नमूना, लेप या गिलाफ, तुम्हारे ऊपर चढ़ता गया है जो कि काल्पनिक नकशे में हरे रंग पर देशों के मिलते जुलते रंगों की शक्लों में दिखाये गऐ हैं। देखो चित्र में अक्षर क्रमशः क, ख, ग, घ, ङ।

अब जो प्राणी जन्म मरण से रहित होना चाहता है तो उसको ये सब लेप जो सुरत पर अहसासास (भान बोद्ध) के रूप में चढ़े हुए हैं, एक एक करके उतारकर उन भान बोद्धों से निकलना होगा। सुमरिन

विश्व की रचना का काल्पनिक चित्र



करके, शारीरिक भान बोद्धों से निकल जाना होता है और ध्यान के साधन से सुरत, मन के भान बोद्ध से भी निकल जाती है और अन्तर के प्रकाश देखने से सुरत आत्मिक भान बोद्धों से निकल जाती है और सार शब्द को सुनते सुनते वह चेतनता के लेप से निकल कर, नंगी या निर्लेप होकर अनामी पुरुष में मिल जाती है जैसा कि चित्र में अक्षर च, छ, ज, झ क्रमशः बाताऐ गये हैं ।

परम दयाल जी महाराज का अनुभव

मैंने सतगुरु स्वरूप कृषक जी के इस ब्रह्मण्डी रचना के लेख को बड़े ध्यान से सुना । चित्त बहुत प्रसन्न हुआ । उनके लेख में, अब तक जो धर्म पंथ तथा संत हुये, जैसे कबीर साहिब, राधास्वामी मत आदि २ का प्रभाव है अथवा संस्कार विद्यमान है। इस समय संसार विज्ञान को समझता हुआ पुरानी विचारधारा को समझ नहीं सकता । कुछ लोग जिन

पर धर्म व पंथ के संस्कार हैं वे किसी सीमा तक मानते हैं किन्तु आचरण उनका भी नहीं है जिस से उनको उस पंथ या धर्म के प्रति सच्चा मान सकें।

मैं इसी रचना का वर्णन अपने निज अनुभव के आधार पर अपनी ही संतुष्टी के लिये करता हूं। मुझे अन्य सन्तों के अनुभव का पता नहीं। जब साधक साधन करता है, उसके अन्तर में वे ही संस्कार या प्रभाव फुरते हैं जो उसके मस्तक पर पड़े होते हैं। इन प्रभावों के अतिरिक्त वह कुछ नहीं देखता। किन्तु यह जो ब्रह्मण्ड अथवा अन्तर का खेल है उसको एक उदाहरण से समझाता हूं। हिप्नोटिज़म मेस्मरेज़म वाले एक मामूल (पात्र) बना लेते हैं उसको प्रभावित करके कहते हैं, देखो ! बादशाह आ गया, यह हो गया वह हो गया, जैसे २ विचार उस पात्र या मामूल को दिये जाते हैं वैसा वैसा वह दृष्य देखता जाता है। मैं यहां जिन संस्कारों का वर्णन करना चाहता हूं वह ऐसे संस्कार नहीं है। न यह संस्कार सुने हुये होते हैं न देखे हुये होते हैं, न वह बताये हुये होते हैं। यह संस्कार प्राकृतिक हैं। आपका देह है इसमे मांस, हड्डी, रक्त, मज्जा आदि हैं। यह देह बना बाह्य

पदार्थों से, *Vitamins* खाद्य पदार्थों के जीव तत्वों और *Minerals* खनिज पदार्थों से। इसही प्रकार हमारे सूक्ष्म और कारण शरीर भी प्रकृति के पदार्थों से प्रभावित हैं। जिस प्रकार के गृह और लोकों की किरणों से हमारे अंग प्रत्यंग प्रभावित हैं, वैसे ही हमारे विचार अथवा कर्म होते हैं और वैसे ही अनुभव साधनावस्था में अन्तर में आते हैं। इनके अतिरिक्त जो अनुभव होते हैं वे आमिल (हिप्नोटाइज़र) और मामूल (हिप्नोटाइज्ड) के समान होते हैं। जैसा आमिल ने विचार दिया वैसा मामूल ने देखा। इसी प्रकार अब जो वस्तु हमारे अंतर में और हमारे स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के कर्मों की साक्षी है वह भी हमारे देह में किसी और जगत या लोक से आई है।

मेरे इस वर्णन का क्या भाव है ? मेरा भाव यह है कि जो साधक उस अंतिम सौपान या अवस्था तक जाना चाहता है, उसके लिये यह आवश्यक नहीं कि जैसा पुस्तकों में अन्तर के लोकों का हाल लिखा है, दृष्यों का हाल लिखा है, उन सबका वह भी अनुभव करे। उसको वही नज़र आयेगा जैसी उसकी शारीरिक

मानसिक तथा आत्मिक स्थिति होगी या जैसी उसकी प्रकृति होगी। कई सतसंगी सारी आयु, इन सोपानों को देखने की लालसा में ही, जिनका वर्णन पंथों, धर्मों की पुस्तकों में है, भटक रहे हैं। उनकी आयु तो व्यतीत हो गई और मिला कुछ नहीं। ऐसी अवस्था में मैं अपने कर्त्तव्य वश कह देना चाहता हूं कि यह आवश्यक नहीं है कि जैसा वर्णन पंथों में आया है और सुना हुआ है वही दिखाई अन्तर में देवे। इन अवस्थाओं का अथवा अलग २ स्थानों का जो वर्णन पुस्तकों में है वह साधकों को भरम में डाल देता है। सार बात की समझ नहीं आती। इसीलिये किसी जीवित पूर्ण गुरु की संगत करना आवश्यक है। उदाहरण के रूप में ब्रह्मसूत्र में कोषों का वर्णन है कि वहां क्या होता है। ब्रह्मसूत्र में ऋषि कहता है कि विज्ञानमय कोष का सिर आनन्द है, दायां कंधा संतोष है, बांया कंधा शान्ति है, पैर खुशी है और विज्ञानमय कोष की पूंछ ब्रह्म है। अतः यदि प्रकाश के साधन करने वाले को प्रसन्नता, शांति, निश्चिंतता प्राप्त होती है तो उसका साधन ठीक है। उसे कोई दृष्य आदि देखने की कोई आवश्यकता नहीं यह सब दृष्य कल्पित हैं। साधन का ध्येय भी चिन्ता रहित रहना, दुःख रहित

रहना, निडर रहना, सन्तोषी होना निभ्रांत होना ही है। यह शांति और निर्भयता आदि यदि नहीं हैं तो लाख इन कल्पित दृष्यों को देखते रहो, तुम ध्येय को प्राप्त नहीं कर सकते। जिस प्रकार आमिल मामूल में कल्पना उत्पन्न कर देता है उसी प्रकार यह अभ्यासी भी अपने अन्तर कल्पनाओं के दृष्य बना बना कर कल्पित आनन्द लेते हैं और प्रसन्न होते हैं। मैं स्वयं भी सन्तों की वाणियाँ, सन्त कबीर साहिब तथा सारबचन नज़म से आकर्षित हुआ था। लिखा है :—

कर नैनों दीदार महल में प्यारा है।
कर नैनों दीदार वो अंड मंझारा है।
तू सूरत नैन निहार ये अंड से पारा है।

ऐसी ऐसी वाणियों के प्रभाव में आकर मैंने भी बारह २ घंटे अभ्यास साधन किया। जब कृषक जी या अन्य सतसंगियों से मुझे पता लगा कि मेरा रूप उनके अन्तर में जाकर उनको लोक लोकांतरों की सैर कराता है, अनहोनी बातें करता है, वास्तव में मैं तो होता नहीं तो मुझे विश्वास हो गया कि ये जितने अन्तर के सोपान हैं, सहसदल कमल, त्रिकुटी सुन्न, महासुन्न, भंवरगुफा अथवा अन्नमय कोष मनो-

मय कोष, प्राणमय कोष, विज्ञानमय कोष आदि २ सभी कल्पित हैं। जब तक कोई इस कल्पना के जगत से परे का अनुभव नहीं होता, वह जीवन के ध्येय को प्राप्त नहीं कर सकता। इस लेख से मैं यह बताना चाहता हूं कि सतसंगी जो अभ्यास करते हैं उनको यह बता जाऊं कि उनका वास्तविक ध्येय अपने आप में ठहरना है। दूसरे शब्दों में सुरत का निरत हो जाना है। मैंने कल्पना शब्द का उपयोग किया है। साधक जब तक कल्पना में है वह कल्पना ही उसे सत्य प्रतीत होती है। साधक को कल्पना से निकलने के लिये किसी सतगुरु की आवश्यकता होती है। दाता दयाल जी ने अदभुत उपासना योग नामी किताब लिखी है, उसमें इन सभी स्थानों का वर्णन है। वे लिखते हैं, जब तुम्हारे अन्दर बीन बजने लग जाय सतलोक की, तो गुरु खोजो। बीन सुनी तब गुरु की क्या आवश्यकता? आवश्यकता है क्योंकि जो भी उसने देखा अनुभव किया वह तो कल्पना थी। मुझे कल्पना अथवा माया से निकालने वाले वे सतसंगी हैं जिनके काम मेरे रूप ने प्रगट होकर किये। मैं उन्हें सच्चा ज्ञानदाता मान कर उन्हें गुरु समझकर उनके चरणों में अपना सिर झुकाता हूं।

वह साधन, सहस दल कमल से लेकर सतलोक तक का, उनके लिये आवश्यक है, जिनके मस्तक पर पंथ और धर्म के संस्कार पड़े हुये हैं। वे इसका जब तक अनुभव नहीं कर लेंगे, उन्हें शांति नहीं मिलेगी। यह डाक्टर नागी साहिब आये हैं और उस सर्वाधार का दर्शन करना चाहते हैं। जब तक ऐसे दृष्य इनको नहीं दखाई देंगे, इनके मन की वासना बनी रहेगी। सबके लिये एक ही प्रकार का साधन नहीं है। सतगुरु वह है जो प्रकृति के अनुसार साधन बतावे व जीव को शांति पहुंचावे। सन्तों के मार्ग में इसीलिये कोई किताब नहीं है। तीन बातें हैं। १. पूरा सतगुरु, २. उनकी संगत, ३. उनका सतसंग। सबका ध्येय तो शांति ही है। पंथ को चलाने के लिये लोगों को एक पंक्ति में रखने के लिये विशेष प्रकार की प्रणाली निश्चित की जाती है। सभी धर्मों की विचारधारा अलग २ होती है और अनुभवों को जो उनके चलाने वालों को हुये, उन्होंनें उनके नाम अपने अपने रख लिये। दातादयाल जी कहा करते थे कि यह साधन, केवल छह महीने का है। जब वे कहते थे मैं चकित होता था। आज मैं भाग्यशाली व्यक्ति हूं और दाताजी के गुण

गाता हूं कि उन्हों ने मुझे काम देकर कहा था कि फकीर! तुम्हें मंजिल पर पहुंचाने वाला सच्चा सतगुरु सतसंगियों के रूप में मिलेगा। कृषक जी जैसे सतसंगियों ने अपने अनुभव कहे जो मुझे गुरु मानते हैं। मैं उन्हें अपना सच्चा सतगुरु मानकर प्रणाम करता हूं।

पुष्प नं० ३

खौपड़ी में शब्द है मौजूद है प्रकाश भी।
क्यों नहीं देता सुनाई और लखाई हर घड़ी॥

ऊपर लिखी हुई पहेली का जवाब मैं उस अनुभव के आधार पर लिख रहा हूं जो कि मुझे ४२ वर्ष से सुरत शब्द योग अथवा नाम की भक्ति का साधन करते हुये आज की तारीख ३० जून १९७५ तक प्राप्त हुआ है या सन्तों के प्रबचन या वाणियों से मिला है। मुमकिन है यह मेरा ज्ञान या अनुभव ग़लत हो परन्तु मैं इस अपने अनुभव व ज्ञान से सन्तुष्ट हूं।

वास्तव में शब्द व प्रकाश के भण्डार तो, वह ऊपर के लोक व मण्डल हैं जिनमें होकर हमारी सुरत

अनामी धाम को छोड़कर माया देश तक आती है। और उन शब्द व प्रकाशों के प्रतिबिम्ब अथवा अत्यन्त छोटा नमूना, दल या चक्र के रूप में सुषुम्ना नाड़ी, जो अत्यन्त बारीक है यानी जो ख़ुर्दबीन से भी नहीं देखी जा सकती, के अन्दर ही लगे हुए रहते है। साधन के समय, साधक की सुरत इस सुषुम्ना नाड़ी में ही नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे आती जाती रहती है। यद्यपि यह शब्द व प्रकाश के नमूने या चक्र अत्यन्त झीनें (बारीक) होते हैं तो भी इनके अन्दर टैलीविज़न सैट जैसी सुनने व देखने की शक्ति होती है जो टेलीविजन केन्द्र से वहां होने वाले दृश्य व शब्दों के ग्रहण (*Receive*) करने की शक्ति होती है और जब हमारी सुरत जिस भण्डार के रिसीवर पर पहुंचती है उस भण्डार के होने वाले शब्द व प्रकाश सुनाई व दिखाई देते हैं। जब हमारी सुरत उस भण्डार के रिसीवर को छोड़-कर दूसरे भण्डार के नमूने या रिसीवर पर पहुंचती है तो पहले रिसीवर के शब्द व प्रकाश तो खत्म हो जाते हैं और दूसरे रिसीवर या चक्र के शब्द व प्रकाश सुनाई व दिखाई देने लगते हैं। इस सवाल का जबाब

कि हर समय वो प्रकाश व शब्द क्यों नहीं दिखाई व सुनाई देते हैं यह है, कि हमारी सुरत हर घड़ी उन मुकामात या रिसीवरों पर नहीं रहती ।

परम दयाल जी महाराज का अनुभव

श्री कृषक जी के इस कथन कि जब शब्द और सुरत हमारे अन्तर हैं तो हमें क्यों नहीं सुनाई देते, मैं सहमत हूं । उनकी यह विचारधारा पिछले पंथों या महापुरुषों के पुराने विचारों के अनुसार ही है ।

मेरा अनुभव यह है कि प्रकाश व शब्द दो प्रकार के हैं ? १. प्राकृतिक २. स्वभाविक । जो प्रकाश हम देह और मन के क्षेत्र में सोंह पुरुष तक देखते हैं या वहां के शब्द सुनते हैं वो जिस प्रकार की प्रकृति और वासना हमारे अंत:करण में होती है तथा जब वह अन्तर में अकेली होती है तब उस वासना के अनुसार वह शब्द होते हैं ।

मैं फरीदकोट में स्टेशन मास्टर था वहां आद-धर्मी दो व्यक्ति मुझे अपने गांव ले गये। वहां एक बूढ़ा आदधर्मी था। पढ़ा लिखा नहीं था। साधारण आदमी था। उस बूढ़े ने मुझ से प्रश्न किया कि उसे किसी कबीर पंथी साधू ने एक मंत्र ४० दिन जपने के लिये दिया था। पन्द्रह दिन मंत्र ज़पने के बाद रात के समय ऊपर रज़ाई लिये हुये भी वह मकान की छत तथा प्रकाश भी देखता था। उसने कहा कि उसे एक दिन ऐसा मालूम हुआ कि उसकी आँखें बैठ रही हैं और वो एक ऐसे स्थान पर पहुंच गया है जहां केवल हरे रंग की ही रोशनी थी। वह डर गया और डरने से साधन छोड़ दिया। उसने पूछा कि वह कौनसा लोक है जहां हरी रोशनी है। अब हरे रंग के प्रकाश का वर्णन किसी सन्त की वाणी में नहीं आया है। मैंने भी हरा रंग नहीं देखा अपने अन्तर में। मैंने उससे पूछा कि वह मंत्र सुनाओ जो वह गुरु तुमको दे गया था। वह मंत्र उसने सुनाया, उस मंत्र में हरे हरे का शब्द पांच सात बार आया था। उस व्यक्ति को उस मंत्र का अर्थ तो पता न था कि 'हरे' भगवान के लिये कहा गया है किन्तु वह यह

जानता था कि हरा रंग होता है। उसके विचार के अनुशार जैसा कि वह 'हरे' का अर्थ हरा रंग मानता था उसे अपनी आत्मा की सफेद रंग की रोशनी हरी मालूम पढ़ने लगी, ऐसा ही हाल शब्दों का है।

मैंने ५ नाम की व्याख्या नामी किताब लिखी, उसमें बताया है, घंटा क्यों बजता है, शंख क्यों बजता है, मृदंग क्यों बजता है और सारंग सारंग क्यों बजता है। यह जितने शब्द प्रकाश हैं प्राकृतिक हैं। असली शब्द और प्रकाश स्वेत प्रकाश है जिसे सतलोक, सतधाम या सतनाम कहा जाता है। वह तो बिल्कुल सफेद रंग की रोशनी है और न टूटने वाला शब्द है यह मेरा अनुभव है।

जो जिज्ञासु अपने घर जाना चाहता है वह यदि सभी वासनाओं को त्याग कर अन्तर में सच्चा होकर साधन करे तो सार शब्द व सार प्रकाश स्वयं उसके सामने आ जायगा। वही उसके निज स्वरूप का प्रकाश है।

मैं यह इसलिये लिखता हूं कि दातादयाल जी ने कहा था कि चोला छोड़ने से पहले शिक्षा बदल जाना। दूसरे मैंने स्वयं साधन करके अनुभव किया है। साथ ही सतसंगियों के अनुभवों ने मेरी आंखे खोलदीं।

अब इन नीचे के स्थानों का अभ्यास छूट गया और शंकाएं तथा भ्रम न रहे, तो विश्वास हो गया कि यदि कोई गुरु के पास सच्चा होकर जाये, सतसंग करके इष्ट पद समझ ले और इष्ट को शरण में संपूर्ण भावेन अपने को समर्पित कर दे तो यह साधन की सभी सोपानें अपने आप तय हो जाएंगी तथा शांति प्राप्त हो जाएगी ।

—❋—

पुष्प नं० ४

अहिंसा परमोधर्म

हमारे देश भारत वर्ष में खासकर उन मज़हबों के मानने वाले लोगों में, जिनमें आवागमन माना जाता है, यह सिद्धान्त हमेशा से माना जाता रहा है। यह बात दूसरी है कि लोग चाहे अहिंसा के ठीक माने समझते भी हैं या नहीं। अहिंसा का ठीक अर्थ समझने के लिए पहले यह जानना ज़रूरी है कि हिंसा किसे कहते हैं। अधिकतर लोग हिंसा के माने यह लगाते हैं कि किसी जीवित आदमी, पशु व दुसरे जीव जन्तु व कीड़े मकोड़ों को जान से मार डालना। परन्तु हिंसा की यह व्याख्या अधूरी है।

अपने मन, वचन व कर्म से किसी के मन या आत्मा को ठेस पहुंचाना भी हिंसा का एक जबरदस्त अंग है। उपर लिखे हुए हिंसा के कार्यों को न करना ही सच्ची अहिंसा है। जब मैं कृषि कालिज कानपुर में सन् १९१५ में शिक्षा प्राप्त कर रहा था तो हमारे वनस्पति शास्त्र (*Botany*) के प्राध्यापक (*Professor*) ने अपने व्याख्यानों से व कुछ चित्र खींच कर व कुछ प्रयोग (*Experiment*) करके यह सिद्ध किया था कि वृक्षों में यानि वनस्पतियों में भी जान होती है। उन्होंने जानदार व बेजानदार चीजों का अन्तर इस तरह बतलाया था कि :—

जानदार की पहचान	बे जानदार की पहचान
१, जानदार का जिस्म अन्दर से बढ़ता है जैसे आदमी पशु पक्षीओं का शरीर।	१. बे-जानदार का जिस्म बाहर से कोई चीज जोड़ कर बनाया जाता है। जैसे कि : दिवार अत्यादि
२. जानदार सांस लेते हैं।	२. बे-जानदार सांस नहीं लेते।
३. जानदार अपनी नसल बढ़ाते हैं। यानि बीज पैदा करते हैं।	३. बे-जानदार अपनी नसल नहीं बढ़ाते हैं।

चूंकि वृक्षों में जानदार होने के तीनों गुण पाये जाते हैं, इसलिए मैं मजबूर हुआ, यकीन करने के लिए कि पौधों में जान अवश्य होती है। साथ ही दिल में यह वहम पैदा हुआ कि हमारे धर्म शास्त्रों में तो बनस्पति, यानि सब्ज़ी, तरकारीयां, फल व मूल व कन्द को अत्यन्त ही सात्विकी भोजन ठहराया है। क्या उनका ऐसा ठहराना ग़लत है ? और यदि ग़लत है तो जानदारों के मांस को खाने में क्या दोष है ? साथ ही यह भी यकीन होता रहा कि हमारे धर्म शास्त्र के बनाने वाले ऋषि, मुनि, लोग ऐसी ग़ल्ती कदापि नहीं कर सकते, और ये दोनों वहम व भ्रम पचास साल तक बने रहे और कब खत्म हुये, जबकि मैं १९६४ में कस्बा बिलारी, जि० मुरादाबाद में सतसंग करा रहा था, मैं यह व्याख्या कर रहा था कि एक जीवित आदमी का तन धारण करने वाले के शरीर में हमारे धर्म शास्त्रों के अनुसार पांच कोष होते हैं, जिनमें हमारा जीव फंसा रहता है। यह पांच कोष इस प्रकार हैं कि :—

(१) अन्न मय कोष।　(२) प्राण मय कोष।
(३) मन मय कोष।　(४) ज्ञान मय कोष।
(५) आनन्द मय कोष।

इन पांचों कोषों की व्याख्या हमने संतमत लेख माला के (प्रथम भाग) के पुष्प नं: ७ में चित्र देकर समझाई है। और आगे भी चित्र देकर समझाते हैं।



जब सतसंग समाप्त हो गया तो एक पंडित जिनको लोग शास्त्री कहते थे, खड़े हुए और मुझसे कहने लगे कि आपने पांचों कोषों की व्याख्या पूरी तरह नहीं की, अगर आज्ञा हो तो पूरी व्याख्या मैं कर दूं। मैंने कहा अवश्य करिए, मैं बहुत अहसान मंद हूंगा। वे कहने लगे कि मनुष्यों के शरीर में तो यह पाँचों कोष होते हैं और वह आनन्द अवस्था तक पहुंच

सकता है, परन्तु पशु पक्षी व दूसरे जीव जन्तुओं के शरीर में आनन्द मय कोष नहीं होता केवल अन्न मय, प्राण मय, मन मय, ज्ञान मय होते हैं। जबकि वृक्षों व वनस्पतियों में तथा पानी हवा दूध इत्यादि में पाये जाने वाले किटाणु जर्मस (*Germs Bacteria*) के जिस्मों में केवल दो कोष ही होते हैं यानी अन्न मय व प्राण मय कोष होते हैं जब कि वृक्षों में मन मय कोष, ज्ञान मय व आनन्द मय कोष नहीं होता। मन मय व ज्ञान मय कोष न होने के कारण वे अपने को काट देने, अपने में घाव कर देने तथा जड़ से उखाड़ देने का कष्ट यानी (दुःख) नहीं महसूस करते। और न उनमें, न उनके शरीर में, आदमी व पशुओं के शरीर जैसी पांच ज्ञान इन्द्रियां (कान, आंख, नाक, जीभ व त्वचा) ही होती हैं। मैं उन पंडित जी का बहुत अहसानमंद हुआ और अब भी हूं क्योंकि ऊपर लिखे हुए मेरे दोनों भरम दूर हो गये और समझ आ गई कि वृक्षों में जान होते हुए भी उनमें दुःख, सुख महसूस करने की ताकत नहीं होती है, और मैं भी इसी आधार पर यह बिना संकोच समझता व कहता हूं कि हमारे धर्म शास्त्र

में जो वृक्ष, बनस्पतियों, फल व मूलकन्द को जो अत्यन्त सात्विक भोजन करार दिया है वह ठीक से भी ज्यादा ठीक है क्योंकि इनके सेवन करने से किसी के मन को या आत्मा को ठेस नहीं पहुंचती। अथवा हिंसा नहीं होती।

—※—

परम दयाल जी महाराज का अनुभव

मैं कृषक जी के चौथे पुष्प को पढ़कर बड़ा प्रसन्न हुआ। मैं अहिंसा परमोधर्मा को यह समझता हूं कि किसो के मनको न दुखाना। वैसे तो हिंसा और अहिंसा संसार में सदा ही है किंतु में अहिंसा परमोधर्मा यह मानता हूं कि अपने दिल को न दुखाना-अचित अवस्था में रहना, आनन्द में रहना, ही अहिंसा है। जो इस आचरण का पालन करता है उसके द्वारा किसी का दिल दुख ही नहीं सकता।

आम तौर पर कहते हैं कि पापी कौन है? लोग कहते हैं कि पापी वह है जो दूसरों के दिल को

दुखाता है किन्तु मेरी दृष्टी में सबसे बड़ा पापी वह है जो अपने आप में चिंता करता है, दुखी रहता है और कुढ़ता रहता है।

—※—

पुष्प नं० ५

सार भेद अथवा सुरत के खेल निराले, संतजन देखे भाले

हमारी सुरत के तीन स्वभाविक गुण हैं।

(१) सुरत एक समय पर दो स्थानों पर नहीं रह सकती।

(२) सुरत प्रकाश और शब्द की ओर खिचती है।

(३) सुरत संसार, शरीर, व मन में ठहर कर नाना प्रकार के खेल देखती है और वहां के दृश्य व शब्दों को सुनती है। और उन शब्द व दृश्यों का उस पर प्रभाव पड़ता है। हमारी खोपड़ी अथवा ब्रह्माण्ड में हमारी सुरत नाना चक्रों, सोपानों तथा पदों पर पहुंच कर, नाना प्रकार के शब्द सुनती है, नाना प्रकार के प्रकाश

देखती है और इन शब्दो व दृश्यों का प्रवाभ हमारी सुरत पर पड़ता है उन सब की व्याख्या इस पुष्प में अपने अब तक किये हुए साधनों के अनुभवों, तथा सन्तों की वाणी व प्रवचनों को पढ़कर, सुनकर जो कुछ समझ में आया है, लिखने की चेष्टा करता हूं पर यह दावा हरगिज़ नहीं कि जो कुछ मैंने समझा वह रुपये में सौलह आना ठीक है। पर मेरी इस व्याख्या को ठीक तरह वह ही समझ सकते हैं जो कि सुरत शब्द योग अथवा नाम की भक्ति के अभ्यासी हैं। सम्भव है, जन साधारण की समझ में, यह मेरी आगे की हुई व्याख्या पूरी तरह समझ में न आऐ। आगे के चित्रों में सुरत जिन-जिन स्थानों पर ठहरती है उसको इस चिन्ह द्वारा प्रदर्शित किया गया है। यानि दिखाया गया है। मैंने इन सुरत के खैलों को सार भेद का नाम दिया है। सार भेद से मैं यह समझा हूं कि वह भेद, जिसको पाने के बाद और कोई भी भेद जानना जरूरी नहीं रह जाता, वह सार भेद है। परन्तु इस सार भेद को बुद्धि से नहीं जाना जा सकता केवल इसको तो वह ही जान सकते हैं जो सुरत शब्द योग अथवा नाम की भक्ति

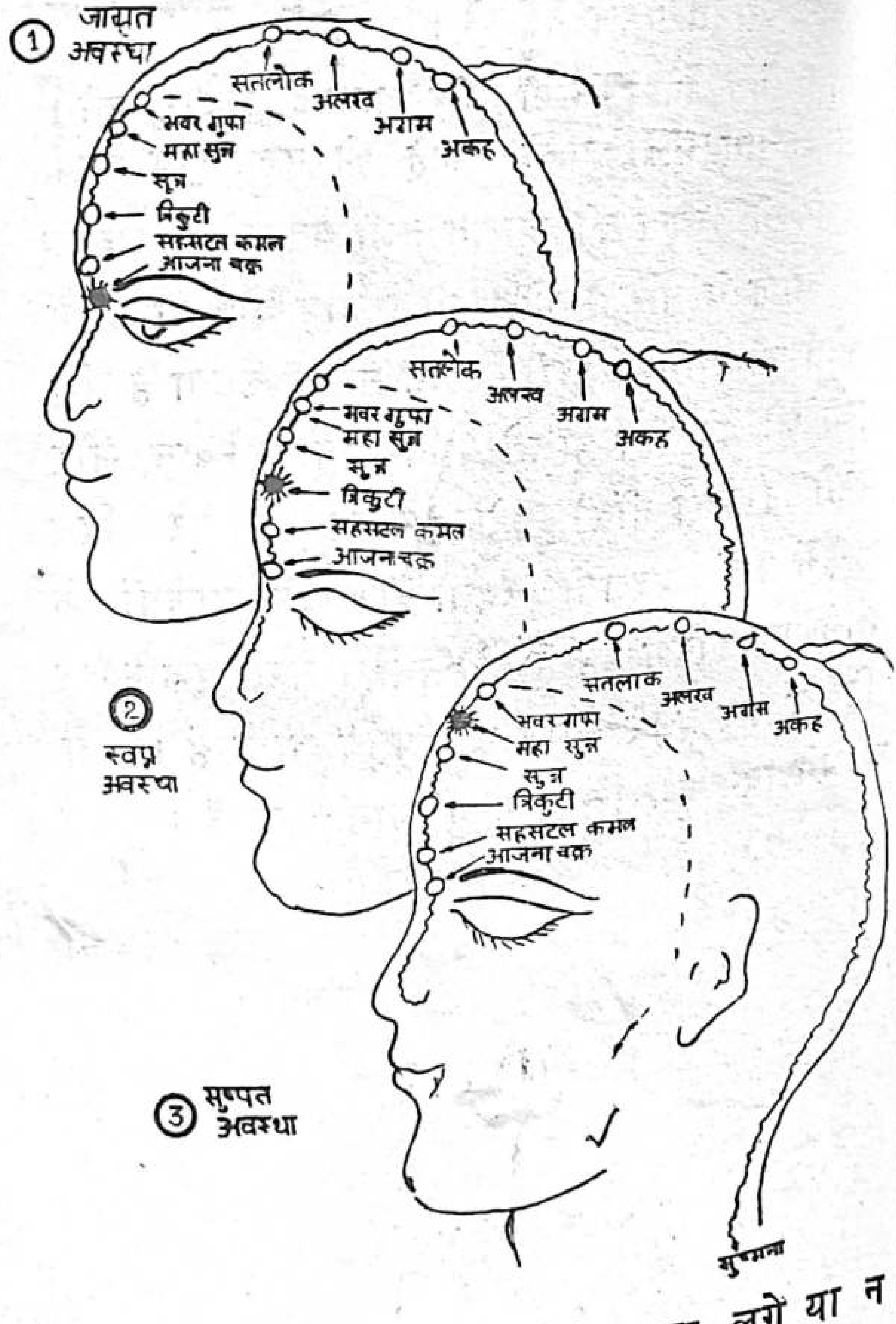
का साधन कर अकह अवस्था अथवा अनामी धाम में जिनकी सुरत पहुंच गई हो।

जागृती गई स्वप्न आया और आ गई अब सुषप्ती।
तीन हालत होती रहती, काहे को हर मनुष्य की।

किसी चीज़ की हालत तभी बदलती है जबकि उस चीज़ में या तो कोई चीज़ जोड़ दो, या उसमें से कोई चीज़ निकाल दो। अब सवाल उठता है कि मनुष्य की ये तीन हालते यानि जागृत, स्वप्न, और सुषप्ती (गहरी नींद) हरेक मनुष्य की, हरेक दिन रात में क्यों बदलती रहती हैं। इन हालतों के बदलने का कारण यह है कि हमारी सुरत एक स्थान से निकल कर दूसरे स्थान पर पहुंच जाती हैं। जैसा कि आगे दिए हुए चित्रों में दिखाया गया हैं।



जागृति, स्वप्न व सुषप्ती अवस्था में सुरत ✽ टिकने के स्थान



नोट :–इन स्थानों पर किसी को पता लगे या न

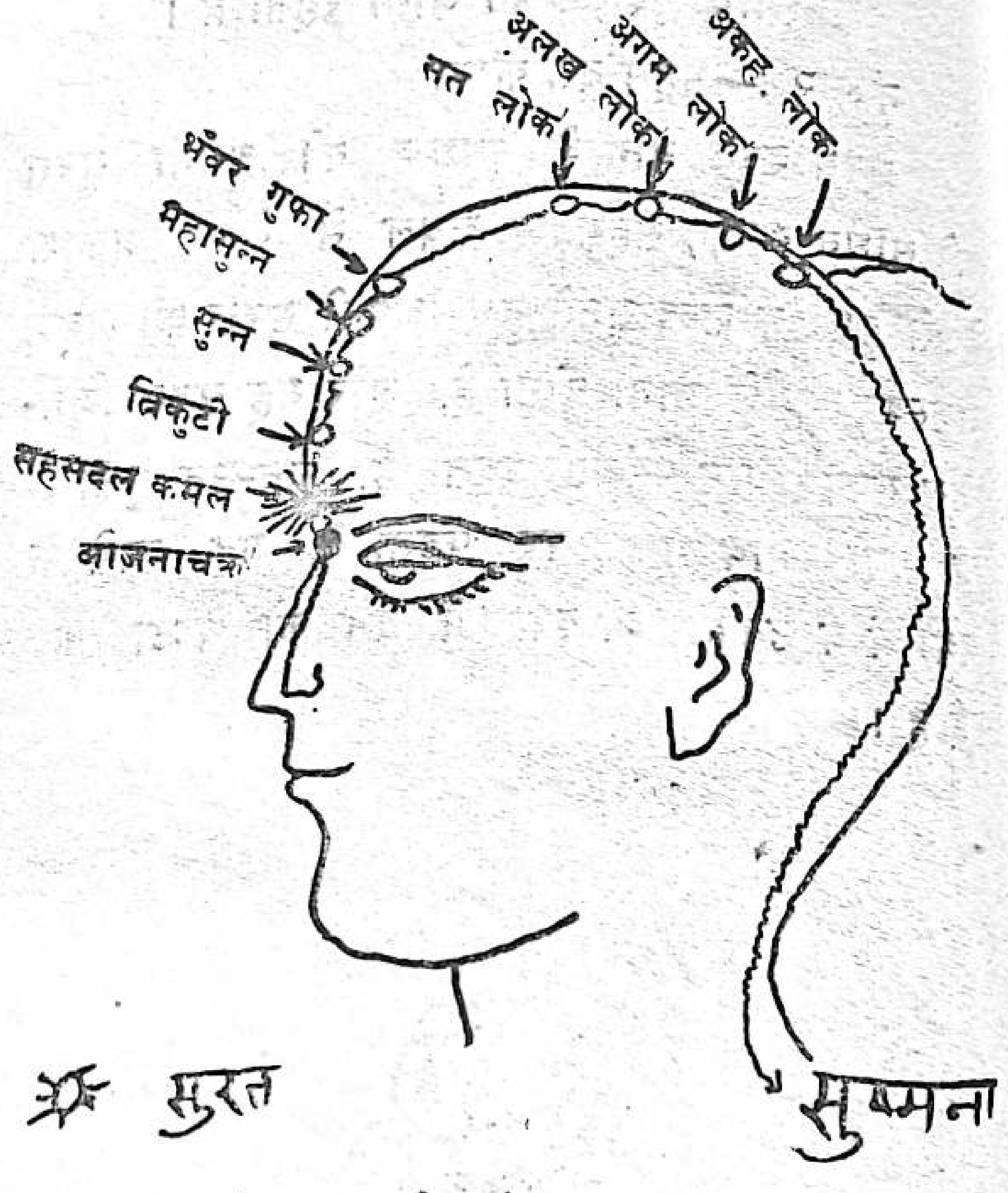
लगे सुरत स्वभाविक तरीके से अपना स्थान बदलती रहती है और दिन रात में ये तीन अवस्थाएं हर एक को आती रहती हैं।

खेल नं० २ :—सहस दल कंवल

सुरत शब्द योग के साधक को अपनी सुरत को साधन करके, सहसदल कंवल से लेकर प्रकाश देखते हुए व शब्द सुनते हुए अपनी सुरत को अकह अवस्था तक ले जाना होता है, और यह सुरत जिन-जिन मुकामों पर पहुंचती रहती है, उन-उन मुकामों का क्या प्रभाव सुरत पर पड़ता है, यह आगे के चित्रों में व उनकी व्याख्या में देने की चेष्टा की गई है।



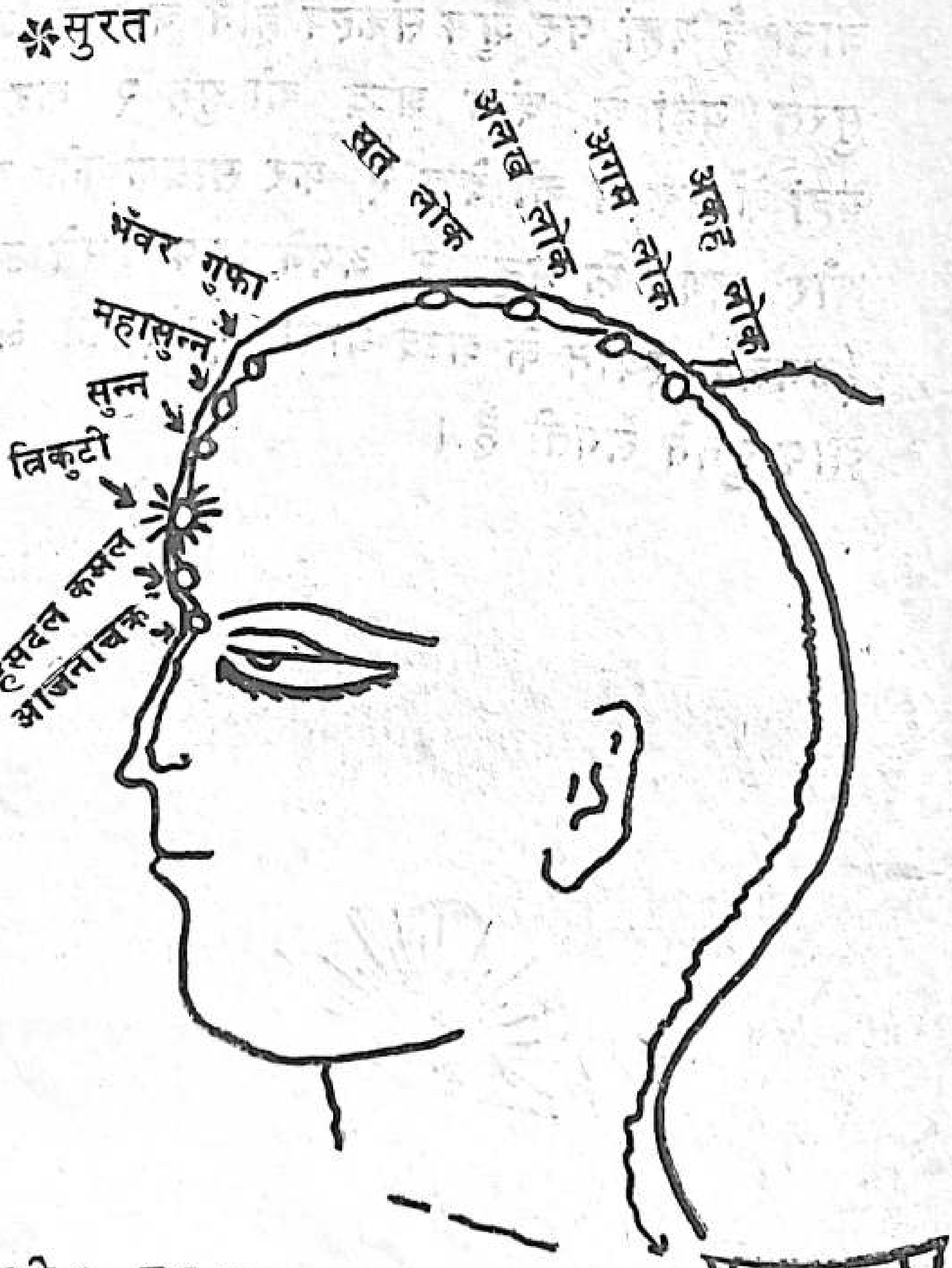
खेल नं० २ :—साधक की सुरत जब सहसदल कंवल पर जमने की आदी हो जाती है।



सहस दल कंवल :—इसे (सहस्रार) भी कहते हैं। शबद, घंटा, शंख, ज्योति, निरन्जन, विराट पुरुष, यह पिण्ड व ब्रह्मांड का नाका है।

प्रभाव :—इस मुकाम पर जिसकी सुरत ठहर जाती है, उसका जीवन श्रेष्ठ बन जाता है मनोबल बढ़ जाता है यहां पर शुभ संकल्प होने चाहिऐं, और सुरत यहां के घंटा शब्द को सुन २ कर व यहां के प्रकाश को देख २ कर साधक की रुचि और लगन के अनुसार अपने आप इससे ऊपर (अगले) स्थान के शब्द यानी मृदंग को अपने आप सुनने लगती है।

खेल नं० ३ :—जब साधक की सुरत त्रिकुटी में जमने की आदी हो जाती है।



त्रिकुटी :—यह गुरु अथवा ज्ञान का स्थान है। मन यहां बैठकर सोचता विचारता व नये नये अविष्कार करता है। ध्येय धाता व ध्यान एकत्र

हो जाने पर गुरु मूर्ति इसी मुकाम पर जमती है। मूर्ति प्रगट हो जाने पर ऊपर की सोपानों पर जाना सुलभ हो जाता है। प्रकाश यहाँ का सुर्खी मायल सुनहरा व शब्द ऊं ऊं या धिक २ मृदंग जैसा, जिसको सुनते सुनते मन निर्मल हो जाता हैं।

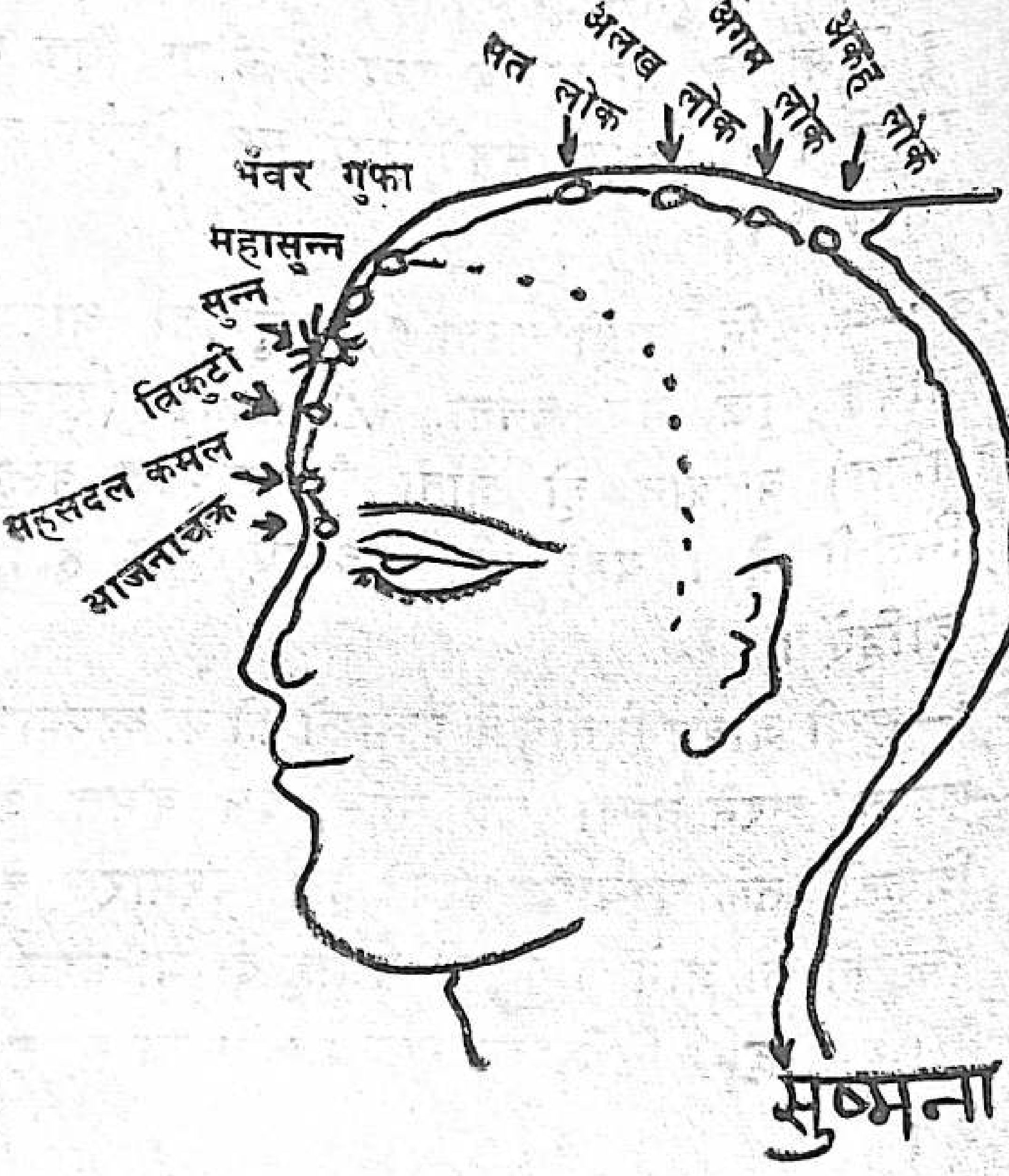
प्रभाव :—मन निर्मल हो जाता है, मनुष्यता आना, जीवन सुख मय बनना, will power (इच्छा शक्ति) बलवान हो जाती है, इच्छित वस्तु मिलती है। यहां पर इच्छाऐं शुभ होनी चाहिऐं।

नोट :—सुखी जीवन बिताने के इच्छुको को या व्यवहार दरुस्त करने वालों को सहस दल कमल व त्रिकुटी तक अभ्यास काफी है। परमारथ के इच्छुको को आगे जाने की सलाह दी जा सकती है। यह ऋद्धि सिद्धि का मुकाम कहा जा सकता है।

सार का सार :—इस चक्र पर अभ्यास करने से ज्ञान प्राप्त होता है, बुद्धि निश्चयात्मक होती है और आगे की सोपानों का सतलोक तक जाने का अधिकारी होता है।

खेल नं० ४ :—सुन्नपर

*सुरत



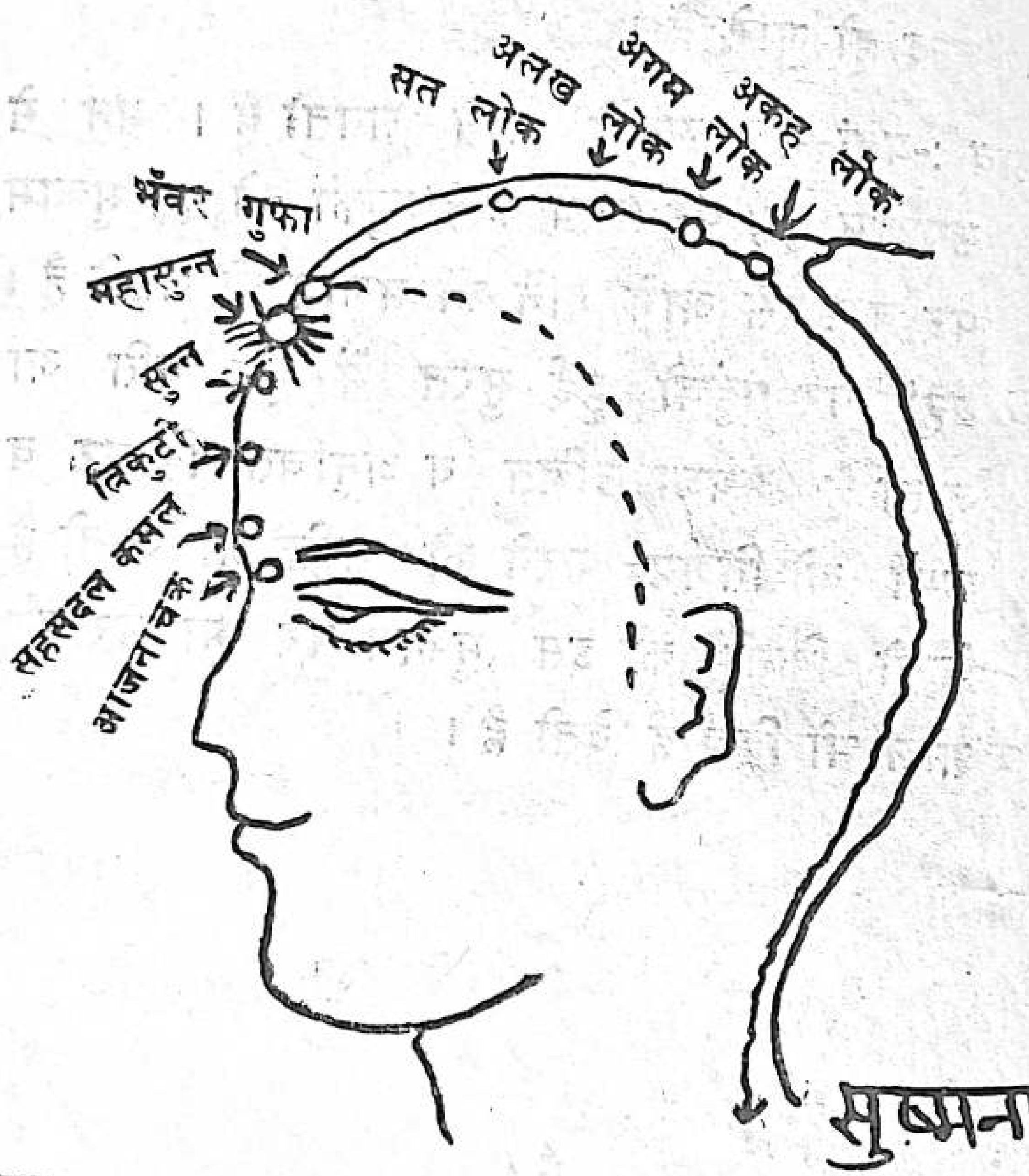
सुन्न :—पांच ज्ञानेन्द्री तथा अन्त:करण के चार चतुष्ठे मन, चित, बुद्धि व अहंकार से ऊपर होने के कारण इसे दसवां द्वार भी कहते हैं। शब्द यहां का रारंग यानि सांरगी है तथा तेज़

प्रकाश (नीलगो) होता है। यह मन की स्वप्न अवस्था है। यहां पर ख्याल यानि विचार उठना बन्द हो जाते हैं।

प्रभाव :-यहां पर मस्ती आने लगती है। मन से उपराम हो, परमारथ के इच्छुकों को इस मुकाम पर व इससे आगे जाने की सलाह दी जाती है। यहां पर पहुंची हुई सुरत में हंस गति आ जाती है अथवा उचित व अनुचित विचार व कर्मों को निर्णय करने की शक्ति आ जाती है किसी किसी को इस मुकाम पर मानसरोवर झील भी दिखाई देती है।

खेल नं० ५

*सुरत

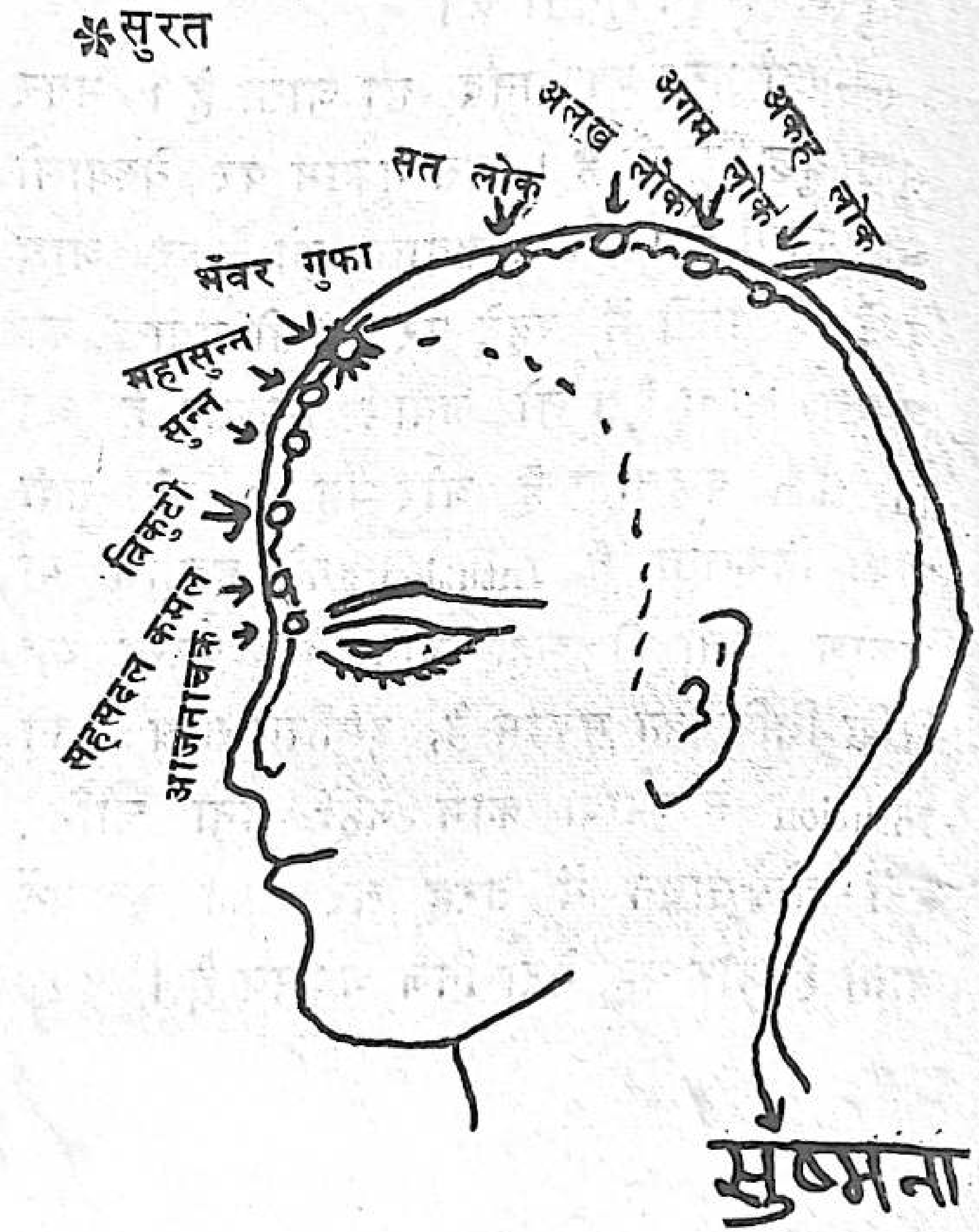


महासुन्न :—मन अमन हो जाने पर जब नि:संकल्प अवस्था छा जाती है, उसका नाम महासुन्न है। न यहां कोई शब्द होता है न प्रकाश। गुरु के बताये मार्ग पर सब्र और विश्वास के साथ नाक की सीध में चल कर इसे सुरत पार कर ऊपर

के स्थान भंवर गुफा में पहुंच कर मुरली या बांसुरी की धुन सुनती है।

प्रभाव :—यहाँ घना आत्मानंद छा जाता है। मगर सुध बुद्ध रहती है। इस मुकाम पर बेख्याली आ जाती है। किसी सवाल को लेकर आध घण्टे बेख्याली में रहने पर किसी सवाल का जवाब आता है। जो जवाब मिलता है वह Intution कहलाता है और वह 90 फी सदी ठीक निकलता है Intution को इल्हाम या अकाश वानी भी कहा जाता है। परन्तु यह रिद्धि सिद्धि का मुकाम है, इसलिए साधकों को Intution से ज्यादा काम नहीं लेना चाहिए नहीं तो साधन में तरह तरह की रुकावटें आती हैं और यह मेरा निज अनुभव है।

खेल न० ६

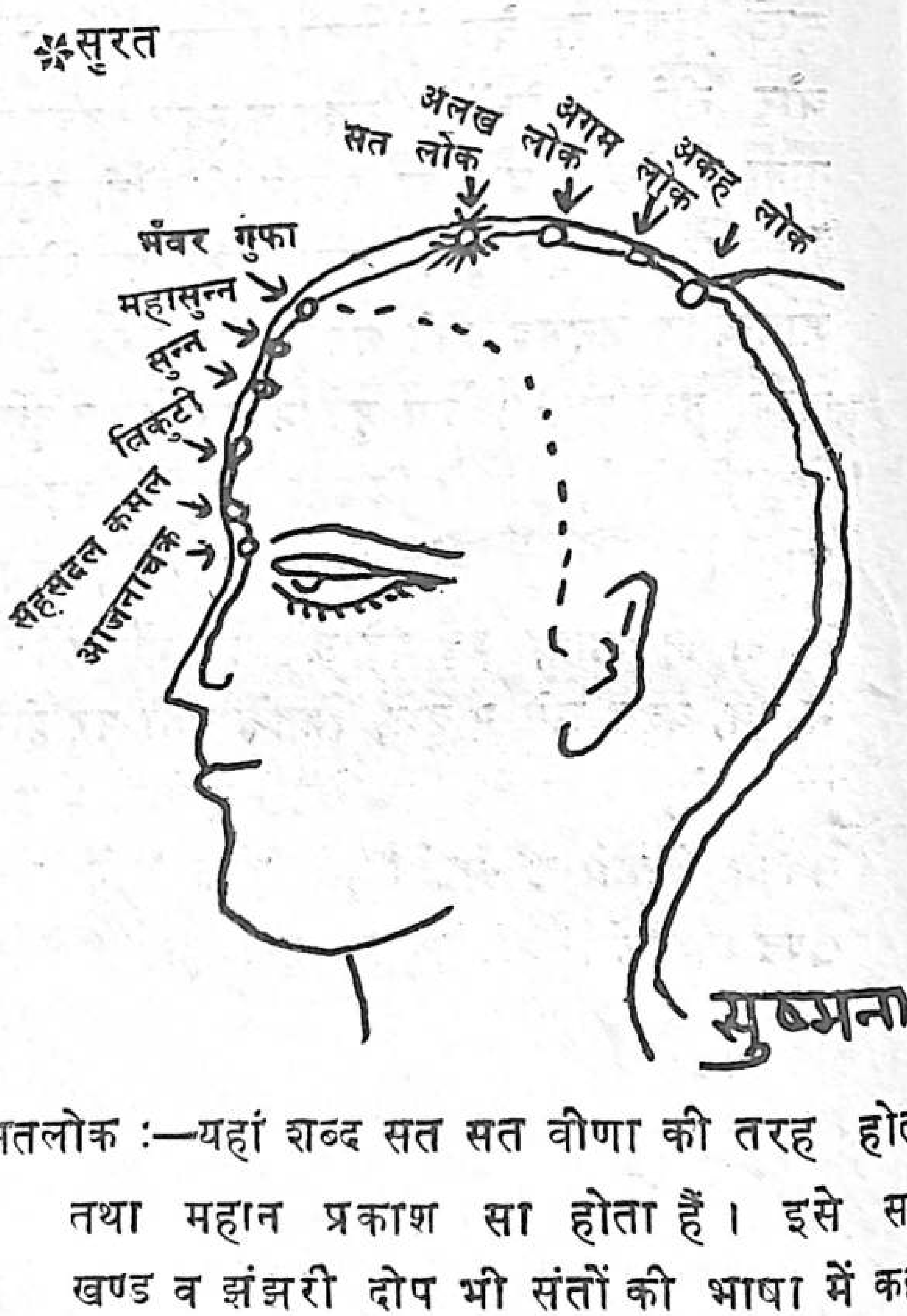


भंवर गुफा :—यहां का शब्द सोहंग सोहंग मुरली का। सफेद प्रकाश बिजली जैसे फुवारे। यह रचना का सबसे ऊंचा मुकाम है। सतलोक (कारण प्रकृति) से नाना प्रकार की शक्तियां Positive व Negative

रूपों में आती रहती है। और सतलोक से ही सुरतें आकर इस देश में रचना प्रारम्भ करती हैं और नीचे के देशों में सूक्ष्म व स्थूल रचनायें नाना प्रकार से व नाना प्रकार की होती रहती हैं। सुरत के इस मुकाम पर टिकने पर जीवन आनन्दमय अनुभव होने लगता है। मगर कुरेद खत्म नहीं होती। इस मुकाम पर बहुत दृश्य दिखाई देते हैं, जैसे कि बिजली के फुवारे उड़ना, आसमान के सब तारे, आकाश गंगा, तथा दशमी का चान्द, बड़े बड़े ऊंचे कई मन्जिलों के मकान, बहुत ऊंचे २ वृक्ष, जिनके पत्तो पर हीरे पन्ने लगे, केसर को क्यारीयां इत्यादि २ इन सबको देखती व सुनती हुई सुरत आगे सच खण्ड या सतलोक में पहुंचती है।

—※—

खेल नं० ७ :



सतलोक :—यहां शब्द सत सत वीणा की तरह होता तथा महान प्रकाश सा होता हैं। इसे सच खण्ड व झंझरी दीप भी संतों की भाषा में कहा जाता है। इसे हैपने का देश व आनन्द का देश अथवा कारण प्रकृति कहते हैं। सब रचना का

कारण यही देश होता है। इस देश में प्रलय नहीं किन्तु आवागवन है अथवा यहां से सुरतें बाहर मुखी होने पर नीचे के देशों को जाती हैं। और अन्तर मुखी होने पर ऊपर के देशों अलख, अगम व उससे भी ऊपर जा सकती हैं। यहां ठहरती हुई सुरत आनन्द घन का अनुभव करती है। इसे आत्मपद भी कहा जाता है। यहां पहुंचने पर भी आवागवन नहीं छूटता और कुरेद भी समाप्त नहीं होती। जो इस सतलोक को पहुंच जाते हैं वह ही आगे अलख, अगम, अकह लोकों तक के जानने के अधिकारी होते हैं। वेदान्त की भाषा में वहां पर भी त्रिपुटी बनी रहती है, अथवा आनन्द, आनन्द का भोगना व आनन्द भोगने वाला। बहुत से लोग इसे अन्तिम अवस्था समझ वहीं रुक जाते हैं। यह भी त्रिलोकी के अन्तर गत एक लोक है।

"नाम रहे चौथे पद माहीं"

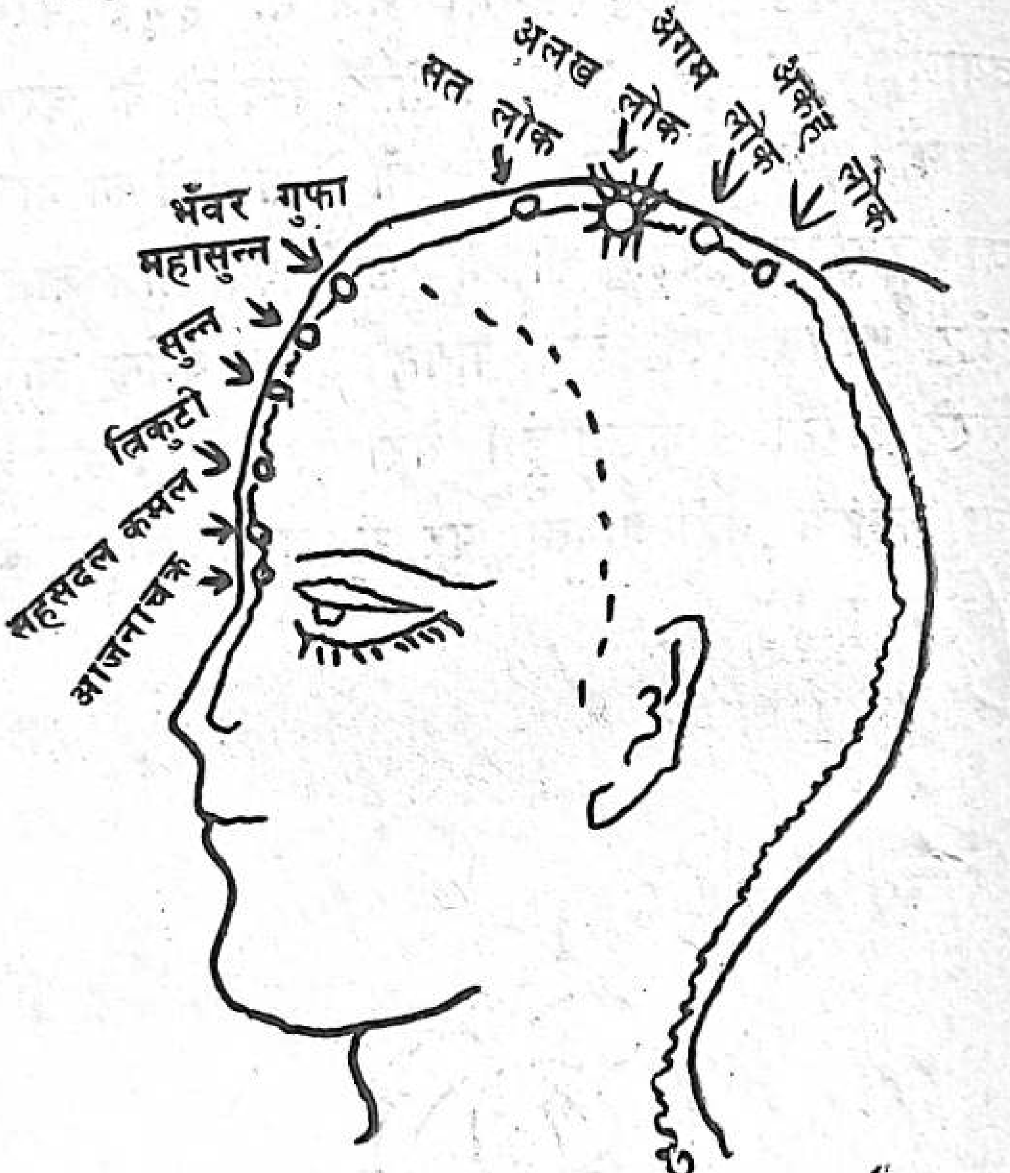
चौथा पद इससे आगे है। अपनी ज़ात यहां तक हमेशा खेलती रहती है। इसे Conciousness भी कहते हैं।

जो साधक इससे आगे अलख, अगम व अकह की सोपानों पर अपनी सुरत ले जाना चाहते हैं उनको उचित होगा कि आगे के साधन के बारे में अपने सतगुरु से मिलें और उनसे सीना बसीना बात करें तो वह आगे का हाल यानी साधन सैन बैन द्वारा अच्छी तरह समझा सकते हैं। हजूर दाता दयाल ने तहरीर फरमाया है कि सतलोक तक तो इल्म सफीना है यानि लिखित में आ सकता है, इसके आगे का इल्म सीना है। परन्तु मैंने आगे अपने निज अनुभव और संतों की वाणियों व प्रवचनों के आधार पर बहुत कुछ लिखा है। यह मैंने क्यों लिखा है, इसलिए कि जिनकी सुरत सतलोक तक पहुंच जावे और उनको मेरी जैसी समस्या पैदा हो कि गुरु चौला छोड़ जाय अथवा संसार में न रहे तो उनको मेरा आगे का लिखना कुछ सहायक हो सकता है। परन्तु उस समय जबकि साधक की सुरत सतलोक में पहुंच गई हो और आगे जाना चाहती हो और उनका गुरु संसार में हो तो उनको अवश्य ही सत गुरु की शरण में जाकर आगे का साधन पूछना चाहिए। जब मेरी सुरत सतलोक में पहुंच गई थी

और उस समय मेरा कोई गुरु संसार में नहीं रहा था, इसलिए मुझे पांच साल तक गुरु की तलाश में व्यर्थ समय खोते हुए मौज मुझे भी हजूर परम दयाल परम सन्त पंडित फकीर चन्द जी के चरण कमलों में ले गई जब कहीं आगे के साधनों का हाल जान कर आगे चढ़ाई की, मैंने उनसे क्या हाल जाना और साधन करके क्या पाया, इसका वर्णन आगे करने का साहस करता हूं। मेरा ऐसा करना ठोक है या नहीं मैं नहीं जानता पर मैं अपने साधन से सन्तुष्ट हूं।

खेल नं ८ :

*सुरत

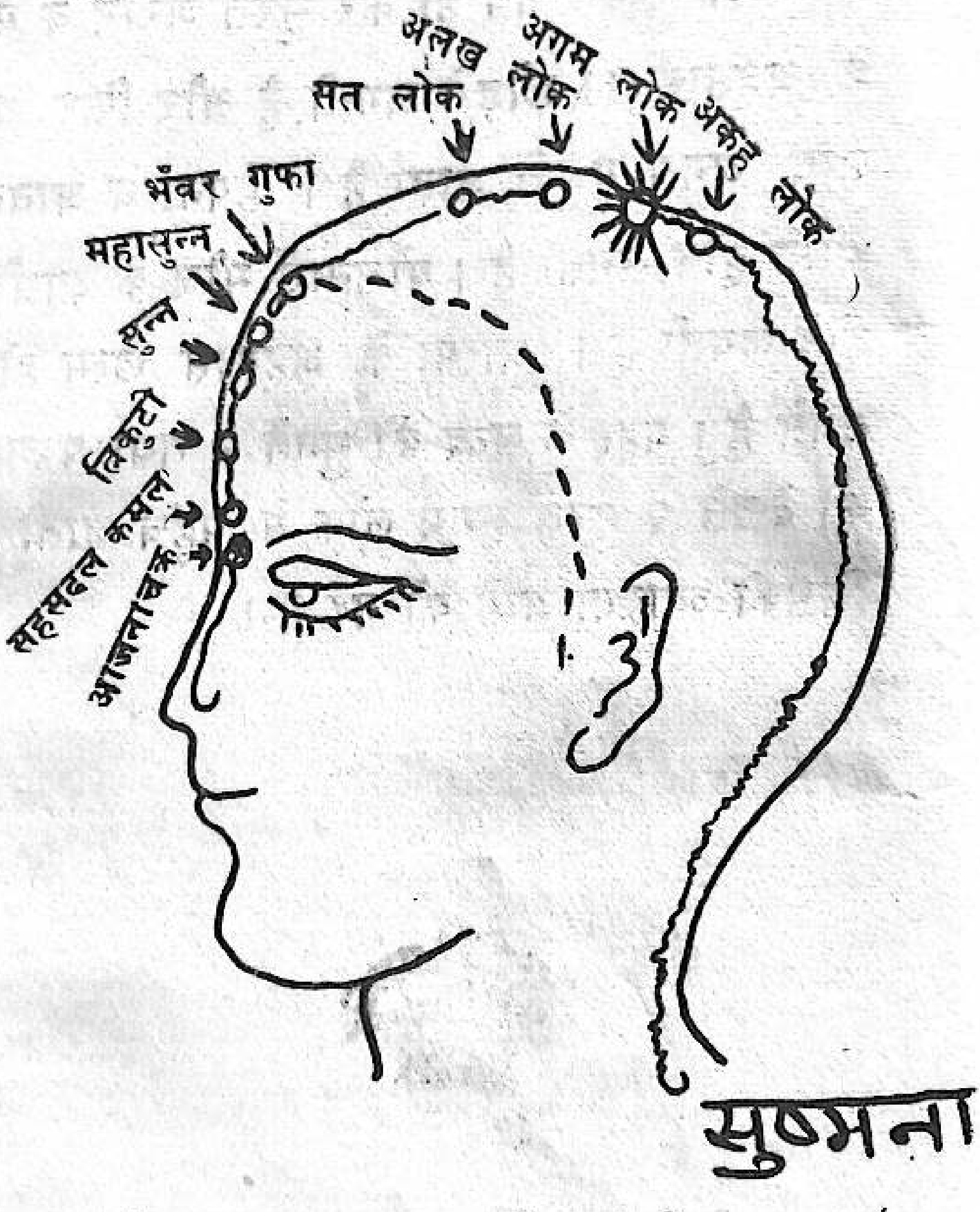


अलख :—आत्मा की या हैपने की स्वप्न अवस्था (State of Super conciousness) यहां से चौथा पद आरम्भ होता है प्रकाश सफेद, कुछ पीला

पन की मिलावट लिये हुए, शब्द में पहले गूंज सी होती है फिर भौरों की सी गुंजार होती रहती है, जिसमें लय हो कर सुरत शरीर व मन के अहसास को छोड़ने लगती है और फिर यह शब्द अगम में ले जाता है। हैपना व आनन्द झीना होने लगता है। वासनाऐं मौज के आधीन होने लगतीं हैं। आत्मा के अहसास खत्म होने लगते है। यहां के शब्द को सुनते २ तथा प्रकाश को देखते २ सुरत अगम लोक में पहुंच जाती है जिसकी व्याख्या आगे की गई है।

खेल नं० ९ :

*सुरत



अगम लोक :—यह आत्मा की सुषुप्ती अवस्था (State of Super Most Conciousness) है । यहां का शब्द unbreakable & pure (एक लय) होता है और शूं शूं जैसी धुन होती है जिसे बाला बोल

भी कहते है। प्रकाश भी सफेद निर्मल (pure) होता है, यह ज़ात का सबसे पहला प्राकट्य है (ज़हूर)। यहां सुरत पहुचने पर शरीर व मन और आत्मा के अहसास (या भान बोध) खत्म हो जाते हैं। विस्माधी व विदेह अवस्था तारी हो जाती है। यह स्थान एक तरह से अमर पद है क्योंकि ऊपर जाकर सुरत को निरत बना देती है यानी अनामी पद में तबदील कर देती है। यानी अपना चेतनपना, अपने आपको भूल कर लामकानी यानी सर्व व्यापक हो जाता है अगम लोक में सुरत शब्द व प्रकाश के भण्डार में लय होने लगती है और वासनाएं मौज़ के अधीन हो जाती हैं। यहां का अभ्यास करने वाले में चुम्बक जैसी आकर्षणशक्ति आ जाती है। अभ्यास से उठकर किसी को शुभ कामनायें देकर छू दे यानी Touch दे दें तो उस Touch लेने वालों का भला होना चाहिए। यहां कुरेद नाम मात्र को रह जाती है जिसके कारण सुरत ऊपर को खिचती रहती है। इस शब्द व प्रकाश से नीचे के लोकों में रचना होती रहती

है। इस लिए इसे ब्रह्म भी कहते हैं। इसी शब्द व प्रकाश में लय होने वाला ब्रह्मवेता कहलाता है और ब्रह्म ही बन जाता है। यह दयाल की गोद कहलाती है। दर असल इस अगम देश की असलियत व अहमियत का पूरा २ अनुभव तब होता है जब एक बार चाहे थोड़ी देर को ही क्यों न हो हमारी सुरत निरत हो अशब्द गति को प्राप्त हो कर सुरत व ज़ात का योग हो जाने पर फिर उत्थान होने पर सुरत अगम अलख व नीचे के स्थानों में आती है। और इससे भी अधिक व्याख्या अगम देश की अकह देश के बयान में मिलेगी। मरते समय जिस प्राणी के अगम के शब्द गूंज उठते हैं वह आवागवन से रहित हो जाता है और हमेशा के लिए ज़ात में लय (Merge) हो जाता है। सायुज मुक्ति का अधिकारी हो जाता है। सन्तों की सुरत वहुधा इसी मुकाम पर ठहरती रहती है। यहां के शब्द को सुनना व प्रकाश को देखना सतपद अवस्था कहलाती है। और कोई कोई इसको जीवन मुक्त, अवस्था भी कह

देते है और कोई कोई इसे विदेह गति कह देते हैं। यह अवस्था तब आती है जबकि :-

जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में, ताही काल न खाय॥

इसकी पहचान यह है कि :-

सहजे ही धुन होत है, अपने घट के माहीं।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजत नाहीं।

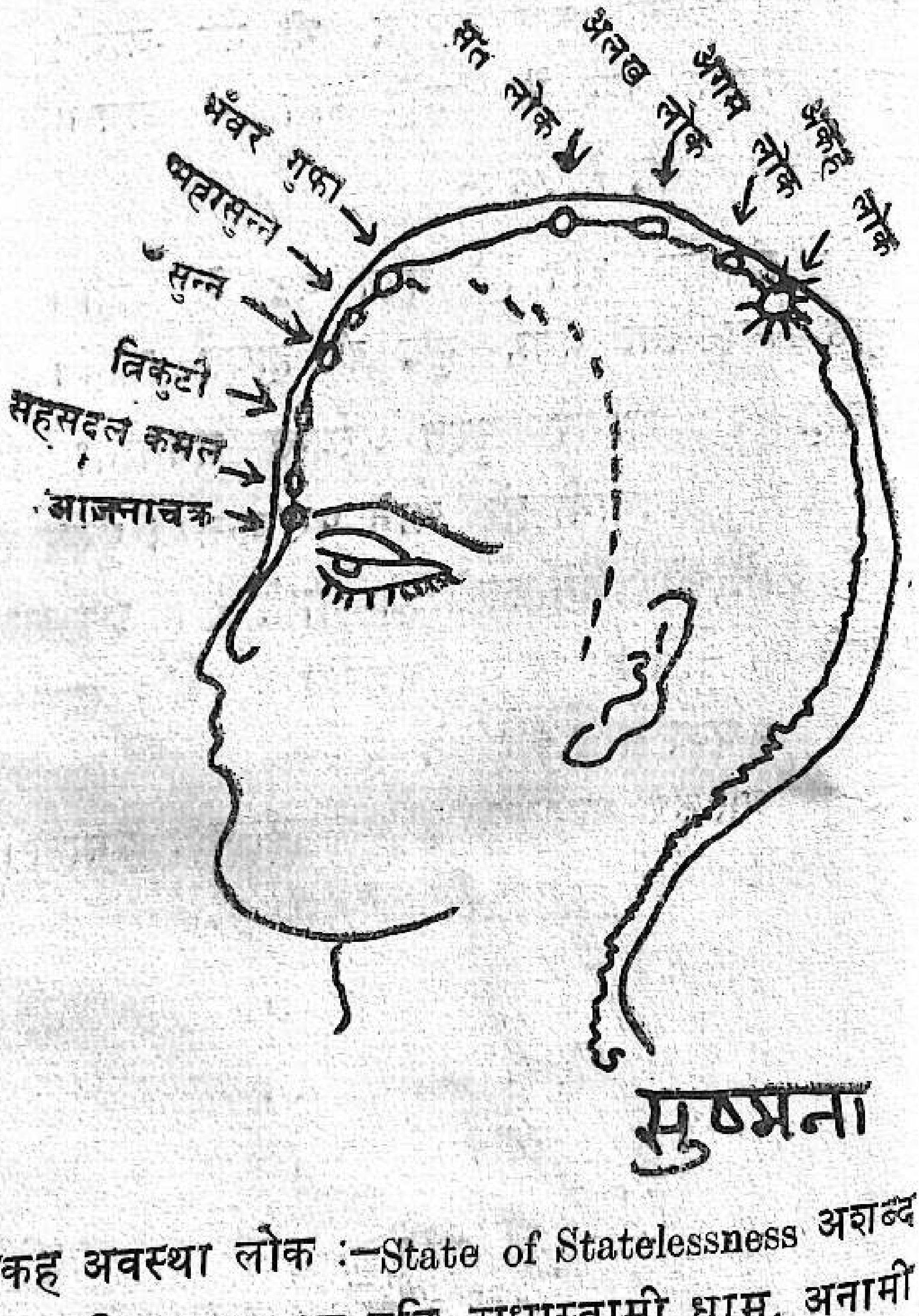
यहां पर आकर सुरत अत्यन्त मगनानी हो जाती है और मगनानी हो जाने पर अनामी पुरुष में लय हो जाने की अधिकारी हो जाती है। इस लय हो जाने का नाम ही अकह अवस्था है, और साधक लोग इसे अशब्द गति कह देते हैं।

सुरत हुई अतिकर मगनानी, पुरुष अनामी जाय समानी।



खेल नं० १० :

*सुरत



अकह अवस्था लोक :—State of Statelessness अशब्द गति व अप्रकाश गति, राधास्वामी धाम, अनामी पद इत्यादि। बहुत से नाम इस अवस्था को दिये

जाते हैं। यहां हर तरह के बोध भानों का खात्मा हो जाता है। यहां आकर सुरत निरत हो जाती है। (चिराग गुल पगड़ी गायब) इस अवस्था को पहुंचे को अनुमान है कि मरने के पश्चात लामकानियत, सर्व व्यापकता व संसार होने की अनभिज्ञता प्राप्त होगी।

जहां पुरुष वहाँ कुछ नाहीं कह कबीर हम जाना।
जो कोई हमरी सैना समझे पावे पद निर्वाणा।

पर, यह गहरी नींद की जैसी अवस्था यानी हालते वे हालती State of Statelessness होती है। जिसे हालते बेहोशो भी कहा जाता है। परन्तु इस हालत में बेहोशी में भी कुछ होश होती है, तन, मन, शब्द प्रकाश की नहीं, बल्कि हस्ती के अस्तित्व का। मगर इस अकह अवस्था में सुरत हमेशा ठहरती नहीं, कभी २ किसी २ को यह अवस्था प्राप्त होती है और फिर इस अकह व अनामी अवस्था में से अपने प्रारबध कर्म वश, तन, मन, आत्माओं के पिजरा तथा उनसे संबधित वस्तुओं के राग व उनके आकर्षण के कारण अचेतन्यता से फिर चैतन्यता में आ जाती हैं। परन्तु यहा पहुंच कर वहां से उत्थान होकर नोचे

आकर परम तत्व का अनुभव हो जाता है। कुरेद मिट जाती है, सार भेद मिल जाता है। यह सुरत चेतन का एक बुल बुला है या चेतन की किरण है, जो उसी के प्रकाश से प्रकाशवान हो कर (लामकानी) उस शब्द गति में आती है। यह किस तरह ठीक है? इस तरह कि हम वहां पहुंचकर फिर अनामी गति फिर नाम गति में आ जाते हैं। इस अवस्था में पहुंचना और वहां से फिर नीचे आना नितान्त मौज अधीन है और वहां पहुंच कर नीचे उतरने के पश्चात यह अनुभव हो जाता है कि हम चेतन का बुल बुला बन कर कैसे उस (चेतन) से अलग होकर नीचे की अवस्थाओं में कैसे आते व फंसते रहते हैं या तबदील होते रहते हैं।

अकह अवस्था के अनुभव हो जाने पर वास्तविक उपरामता आ जाती है और संसार खेल यानि तमाशा सा मालूम होने लगता है तथा संसार फीका दिखाई देने लगता है। दुल्हा दुल्हिन मिल गये फीकी पड़ी बरात।

परन्तु कर्म भोग काटने बाकी रह जाते हैं। जिन्हें काटने के लिए संसार में रह कर व्यवहार और

परमारथ दोनों साथ २ निभाने पड़ते हैं। यह अवस्था संतगति कहलाती है इसमें अन्तरयामीपन आ जाता है। और इस अवस्था में जो कुछ इच्छा करता है, वह पूरी होनी चाहिए, क्योंकि सुरत अब शब्द व प्रकाश का रूप बन जाती है और उस में शब्द व प्रकाश के गुण आ जाते हैं और शहनशाह बन जाता है। ज्ञान फुरने लगता है।

"संत तब लग भय करें, जब लग पिंजर साथ।

पिन्जर तन, मन, शब्द व प्रकाश सबही पिन्जर है। इसे पूर्ण उपरामता हुए बिना सुरत, पूर्णतया पद अनामी में लय नहीं हो सकती यह अपना कर्म भोग है या मौज मालिक कहना चाहिए कि शरीर यात्रा पूरी करने को संसार में रहकर व्यवहार व परमारथ दोनों साथ साथ करने पड़ते हैं। और इनको यथा विधि करते रहना ही रहनी बनाना समझा जाता है या संत की रहनी समझी जाती है।

व्यवहार :—बाहरी सतपुरुष को इष्ट मानकर मन, बुद्धि व वासनाओं को पूर्ण रुपेण इष्ट के आधीन कर अडोल, अचिन्त व अभय रह कर आदर्श मनुष्य का जीवन (जिसमें अपनी रोज़ी आप

कमाने का सिद्धान्त पूर्णतया पालन करते हुए) व्यतीत करना चाहिए। साथ ही गुरु ऋण को उसकी आज्ञानुसार उतारते रहने को पूर्णतया प्रयत्नशील होना चाहिये। और प्राणी मात्र की सेवा गुरु सेवा मानना चाहिये।

परमार्थ :—तन, मन व आत्मा से उपराम हो अगम लोक में शब्द व प्रकाश रूप अपनी सुरत को बनाये रहने का अभ्यास नितान्त जारी रखना चाहिए और अकह व अनामी अवस्था जिसका अनुभव हो चुका होता है, का सुमिरन व ध्यान कर उसकी ओर खिचता रहना चाहिए और उस तक पहुंचने का यत्न करना चाहिए। इस अवस्था में अपना इष्ट बाला बोल व बाला प्रकाश होना चाहिए, और इन्हीं के अधीन मन बुद्धि व खासकर वासनाओं को करते रहना चाहिए। इस तरह यत्न करते रहने पर गुरु की दया से अनुभव व पहुंच हो जाए तो आगे भी भरोसा रक्खो, कि वह सत पुरुष सतगुरु तुमको स्थाई रूप से अपनी गोद में लेकर तुम्हारे व्यक्तिव को समाप्त कर देंगे। बिजली की धार निकली

वह ठिकाने पर पहुंची, पहुंच कर लोटी और फिर बिजली बन गई और खामोशी छागई।

लब खुले और बन्द हुए।
चिराग गुल पगड़ी ग़ायब ॥

परन्तु इस अवस्था तक वे ही महापुरुष पहुंच सकते हैं जो कि सन्तों (सत कबीर, गुरु नानक देव, अथवा दयाल राधास्वामी) के बताऐ हुये सुरत शब्द योग का साधन करते हैं। और बाकी सब साधनों के साधक तन, मन का सुख पा सकते हैं और सम्भव है आत्मानन्द प्राप्त करके व अन्तर के महान प्रकाश को देखकर आत्मपद तक पहुंच जायें, परन्तु वे चौथा पद, अलख, अगम, अकह अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकते। प्राप्त करना तो दूर रहा उन साधकों को इन अवस्थाओं का ज्ञान तक नहीं होता।

परम दयाल जी महाराज का अनुभव

इस पांचवें अध्याय को सुना नक्शे भी देखे, सन्त कबीर का शब्द याद आया :—

कबीर तोड़ा मानगढ़, मारे पांच ग़नीम[1]।
सीस नवाया धनी को, साधी बड़ी मोहीम[2]॥

ऐसा एक शब्द है—ऐसे दास को जब गुरु देखता है तो वह हर्षित हो जाता है। मैं भी हर्ष में आ गया। जो कुछ कृषक जी ने लिखा, अपने अनुभव को कहा, वह सोलह आने सत्य है। मैं इन अवस्थाओं में चला हूं और चलता रहता हूं। हो सकता है कृषक जी मुझसे भी अच्छे हों। मैं अपना जीवन सामने रखता हूं। कभी सब कुछ जानता हुआ, समझता हुआ, प्रारब्ध कर्म कहलो, मालिक की मौज कहलो अथवा मेरी भूल कहलो। मैं अपने वास्तविक रूप को भूल जाता हूं। होश आती है तब संभलता हूं। मेरा जीवन अमली है। मैंने अनुभव किया है। अभ्यास भी बहुत किया है। हजारों लोग मेरा ध्यान करते हैं और मुझे अपना गुरु मानते हैं। वे अपने २

---

1. शत्रु।   2. मुहिम।

विश्वास और श्रद्धा से लाभ उठाते हैं। कितने ही लोग जो बीमार होते हैं, आते हैं और मेरा प्रसाद ले जाते हैं, वे ठीक हो जाते हैं। मैं बीमार होता हूं तो डाक्टरों के पास जाता हूं। कृषक जी बुढ़ापे में हैं, शरीर का कष्ट है और भी बड़े-बड़े सन्त हुये उनके साथ उनके जीवन में ऐसी घटनाएं घटीं जो शोक-जनक थीं। यह देखकर विचार आता है कि भाई! इतनी सोपानें चढ़ जाने के बाद, इतना अभ्यास करने पर भी कोई सन्त इस देह और मन की अवस्थाओं में आ सकता है तो इस साधन से लाभ क्या ?

एक लाभ जो मेरी समझ में आया है कि जो अन्तर में खोज करने की वासना थी कि सच्चाई क्या है, सत्य क्या है, क्यों है, व कैसे है, वह वासना समाप्त हो गई। यह लाभ बहुत बड़ा है। यों भी कहें कि अज्ञान का नाश हो जाता है, तो ठीक ही है।

आज मैं प्रसन्न हूं। कृषक जी, अपने आप तथा अन्य उच्चकोटि के सन्तों के जीवन की घटनाएं जो बड़े अनुभवी थे, देखकर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि साधना और अभ्यास तथा रहनी से अज्ञान मिट कर शांति प्राप्त हो जाती है किंतु कर्म का भोग

जिस से इस संसार में ऐश्वर्य सपन्नता, गरीबी, स्वास्थ, रोग, मिलना जुलना, प्यार, दुश्मनी यह नहीं टल सकते हैं। ऐसी दशा में क्या करें ? हम जहां साधन करें वहां अपनी नियत साफ रखें, अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये किसी को तंग न करें, हेरा-फेरी ४२० न करें। संभव है अन्य सन्तों ने तथा कृषक जी ने जो अनुभव किया है उसका परिणाम यह निकले कि हम यहां वापस न आवें। जो कर्म हमने किये कि हम इस लोक में आकर सन्त बन गये, सतलोक की हमने बीन सुनी, अलख, अगम तक पहुंचे, यदि अब हम, जो मन में आवे करते फिरें, यह नहीं होना चाहिए। दातादयाल जी ने शिक्षा बदलने को कहा था, मैं शिक्षा बदले जाता हूं कि ऐ मानव जहां तू अभ्यास करता है, इन सोपानों की चढ़ाई करके आनन्द, प्रसन्नता मस्ती लेता है तथा समाधी लगाता है वहां मेरी बुद्धी के अनुसार उसे अपने कर्म भी ठीक रखने चाहियें। यही कारण है कि मैंने गुरु पदवी पर आकर बिल्कुल सचाई से काम लिया। कोई मान, कोई इज्जत या किसी तरह का ढोंग जैसा कि आज दिन तक गुरुमत में चला आ रहा है नहीं किया।

मैंने दातादयाल जी की दया से सतसंगियों से जिन्होंने मुझे गुरु माना है तथा जो वर्तमान सन्त हैं उनके जीवन से बहुत कुछ प्राप्त किया है। एक बात और कहना चाहता हूं, वह यह है कि ऐ मानव ! इन सभी सोपानों का अनुभव सहज में करना है तो गुरु के पास जाकर कुछ दिनों सतसंग करके अपना इष्ट पद समझले और बाद में अपने अन्तर सच्चा होकर विश्वास से, प्रेम से तथा प्रार्थना से प्यार जगाता रह। उसकी ऐसी दशा होनी चाहिये जैसे कोई किसी आश्रयहीन दीन को कोई मारता है और वह कहता है कि मुझे छोड़दो, मुझे छोड़दो, ऐसे भाव या ऐसा प्रेम होने पर यह सभी अवस्थाएं सहज रूप में अपने आप पार हो जाती हैं। सन्तों ने इसी लिये कहा कि सन्त जीव को बन्द गाड़ी में ले जाते हैं। जैसे सच्चे रूप में रोने वाला स्वयं ही कुछ समय के बाद शांत हो जाता है वैसे ही अपने अंतर में सच्चे रूप में प्रेम करने वाला स्वयं ही शांति प्राप्त कर लेता है।

पुष्प नं० ६

क्या सन्तजन राम, परमेश्वर, खुदा या गौड (God) को नहीं मानते ?

पिछली गुरु पूर्णिमा पर एक संत सतगुरु सतसंग करा रहे थे और उनके अनुयायी यानी शिष्य काफी संख्या में एकत्रित हुए थे और साथ ही एकत्रित हुए थे १०, १२ सज्जन एक टोली के रूप में, जो कि संत मत के न तो अनुयायी थे और न ही विरोधो। सन्त जी के प्रवचन का विषय था "गुरु महिमा, गुरु भक्ति, गुरु पूजा"। सतसंग हो रहा था बीच में ही उस टोली का एक सज्जन खड़ा हुआ और सन्त जी से बोला "महाराज ! मुझको एक शंका है, अगर आज्ञा हो तो अर्ज़ करूं।" सन्त महोदय बोले कि 'भाई आपका ऐसा करना तो हमारे सतसंगों के नियम विरुद्ध है पर चूंकि आप पहली बार आये हैं, आपको इजाज़त है। अपनी शंका बतावें।' वह सज्जन बोले 'महाराज ! क्या सन्तजन व उनके अनुयायी राम, परमेश्वर, खुदा व गौड (God) को नहीं मानते ? सन्त महोदय बोले कि भाई, तुम्हारा प्रश्न तो एक

हद तक ठीक कहा जा सकता है किन्तु इतनी बड़ी सभा में इस प्रश्न को उठाने का आशय बहुत ग़ल्त है। जिज्ञासु बोला कि महाराज ! कैसे ! उत्तर मिला कि इस प्रश्न के पूछने का तुम्हारा आशय यह है कि यदि मैं कह दूं कि नहीं मानते तो तुम व तुम्हारी मण्डली फतवा (दुहाई) देगी कि संतमत नास्तिकों का मत है।'' जिज्ञासु बोला कि, 'महाराज ! मेरा प्रश्न तो ठीक है' तब सन्त महोदय बोले कि भाई। संतमत किसी भी तत्व को मानने तक अपने आपको सीमित नहीं रखते क्योंकि मानी हुई चीज़ ग़ल्त भी हो सकती है और सही भी। सन्त जन तो हरेक तत्व व तथ्य को जानते हैं या जानने की कोशिश में लगे रहते हैं और यह कोशिश तब तक जारी रहती है जब तक कि तथ्य को जान न जायें। ऐसा क्यों करते हैं ? इसलिये कि उनको प्रारम्भ से ही हिदायत की जाती है कि "जब तक न देखो अपने नैना, मानो नहीं गुरु के बैना"। तो आपके प्रश्न का यह उत्तर हुआ कि सन्त जन परमेश्वर या खुदा को मानते नहीं बल्कि जानते हैं और किसी तथ्य को जानने के बाद मानने का स्वाल ही नहीं रह जाता। फिर वही

जिज्ञासु बोला कि "महाराज ! मेरा तो इष्ट 'राम' है और वह 'राम' है जिसकी संस्कृत भाषा में यह व्याख्या की गई है कि "य:स: रमेति सर्वं भूतानि राम:' अर्थात् जो सब चल अचल पदार्थों में रमा हुआ है वह 'राम' है। सन्त महोदय बोले कि 'भाई' इष्ट तो हमारा भी वही है जो हर वस्तु में रमा हुआ या व्यापक है, अन्तर केवल इतना है कि तुम उस तत्व को जो सब में रमा हुआ है बिना जाने या पहचाने केवल संस्कृत की व्याख्या के आधार पर मानते हो और उसको "राम" कह कर पुकारते हो जबकि सन्तजन उसके रूप को जान तथा पहचान कर उसे उसी नाम से पुकारते हैं जो कि उसका असली रूप है।" जिज्ञासु ने प्रश्न किया कि 'महाराज ! वह असली रूप व नाम कैसे जान सकता हूं ? सन्त जी बोले कि "हां। यदि रूप व नाम को जानना चाहते हो तो कोई दो भौतिक पदार्थ ले आओ।" जिज्ञासु रसोईघर से एक काँसे की थाली व एक लोहे का चिमटा उठा लाया। सन्त जी बोले कि 'देखो, तुम्हारी व्याख्या के अनुसार तुम्हारा इष्ट (राम) इन वस्तुओं में रमा हुआ है।" जिज्ञासु ने कहा "जी

हां। सन्त जी बोले कि आवाज़ दो-हमारे राम बाहर आओ" जिज्ञासु ने आवाज़ दी और बोला 'महाराज, वे तो नहीं आये।' सन्त जी बोले 'ऐसे नहीं आयेंगे। इन दोनों वस्तुओं को एक दूसरे से टकराओ।' यह सुनते ही जिज्ञासु ने चिमटा थाली से दे मारा जिस पर बड़े जोर का शब्द हुआ। सन्त जी ने कहा 'देखो, यही है रूप उसका, उस तत्व का जो सब में रमा हुआ है और रूप के अनुसार उसका नाम है 'शब्द' :

इस शब्द को सुन सन्तजन, देते खबर धुर धाम की।
संतमत में सर्वोपरि है, मान्यता इस नाम की॥

जिज्ञासु ने कहा कि "महाराज, कैसे?" उसने कैसे कहा ही था सतसंग समाप्त होने की घंटी बज गई। सन्त जी ने अपने अनुयायियों को आज्ञा दी कि 'वन्दनम्' बोलो, आरती उतारो और प्रसाद बांटो। वन्दनम् बोली गयी, आरती उतारी गई और प्रसाद बांटा जाने लगा। सन्त जी को फुर्सत में देखकर जिज्ञासु ने कहा 'महाराज, मेरे 'कैसे' शब्द का पूरा जवाब नहीं मिला।" सन्तजी बोले 'भाई, हम लोग समय के नियम की पूरी तरह पाबन्दी करने की

कोशिश करते हैं अतः हम क्षमा चाहते हैं पर हां। अगर आपको 'शब्द' के बारे में पूरी-२ जानकारी हासिल करनी है तो इसी साल १९७५ और इसी माह जुलाई की "मानव मन्दिर" पत्रिका जो कि मानवता मन्दिर, होशियारपुर से प्रकाशित हुई है उसको ध्यान पूर्वक समझ बूझ के साथ कम से कम ५ बार पढ़ें। उसमें शब्द के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है और मैं विश्वास करता हूं कि अगर तुम उसके आशय को ठीक ठीक समझ सके तो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर अच्छी तरह मिल जायेगा। तथा साथ ही सन्तमत की शिक्षा की बहुत कुछ जानकारी भी हो जायगी।" उधर प्रसाद बट गया व सत्संगी जन सन्त जी से विदा लेकर अपने अपने स्थानों को चल दिये।

हम भी अपने पाठक गणों से विदा मांगते हैं।

धन्यवाद।

सब को राधास्वामी।

पुष्प नं० ७

जन्म मरण से मुक्ति

प्रारब्ध भोगानुसार मनुष्य इस संसार में अपनी जीवन यात्रा पूरी करने के लिये, कुछ समय को, मुसाफिर की हैसियत से आता है, और यात्रा खत्म होने पर चला जाता है। प्रत्येक मुसाफिर का, यात्रा करने का या सफर करने का लक्ष्य या कहिये उद्देश्य अलग २ होता है। यदि एक रेलगाड़ी में बैठे हुए मुसाफिरों से पूछा जाय तो पता चलेगा कि उनके सफर करने का कोई न कोई लक्ष्य अवश्य होता है। किसी का लक्ष्य व्यापार करना, तो किसी का होगा स्कूल में दाखिला लेना, किसी का लक्ष्य अपने सम्बन्धी की शादि में शरीक होना हो, तो किसी का किसी की मृत्यु हो जाने पर शोक मनाने जाना। किसी २ मुसाफ़िर के सफर करने का लक्ष्य होता है अन्य मुसाफिरों की जेब काटना या उनके माल सामान को चुराना। इत्यादि २.

इसी प्रकार जन्म मरण के सिलसिले में हम सभी मनुष्यों के, इस संसार में जीवन यात्रा करते हुए.

प्रारब्ध कर्मानुसार अथवा मौजूदा स्थिति व परस्थितियों के अनुसार नाना प्रकार के लक्ष्य बन जाते हैं। इन लक्ष्यों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता हैं।

१. निम्न या नीच कोटि के लक्ष्य।
२. मध्यम कोटि के लक्ष्य।
३. उच्च कोटि के लक्ष्य।

१. निम्न कोटि या नीच कोटि के लक्ष्य :—

इस प्रकार का लक्ष्य उन मनुष्यों का होता है। जो अपनी जीवन यात्रा में सिर्फ मजे लूटने पर तुले हुए हैं यानि हर कीमत पर दुनियां के मजे लूटना चाहते हैं। ये दुनियां के मजे लूटने के लिये उन्हें कोई नीच कर्म जैसे चोरी चकोरो, लूटमार, कत्ल, डकेती, रिश्वतखोरी, चोर बजारी, धोका देही इत्यादि, करना पड़ता है वह करते हैं। मौजूदा वक्त में, आजकल की दुनियां के लोगों का अधिकतर यही लक्ष्य होता है। इसका नतीजा यह है कि आज विश्व भर में बेचैनी और बेइत्मीनानी और नाना प्रकार की मुसीबतें आफतें आई हुई हैं। ऐसे लक्ष्य बाले मनुष्यों को जन्म मरण से मुक्ति पाने का लक्ष्य तो दूर रहा जन्म मरण के रहस्य तक का ज्ञान नहीं हो पाता है।

मुझे एक बार अपने किसी कार्य के लिये, एक बड़े सरकारी अफसर से मिलने, उनके मकान पर जाना पड़ा। सुबह का समय था जब मैं उनसे मिला तो वह एक ५-६ वर्ष के अन्धे लड़के को चम्मच से दूध पिला रहे थे। दुआ सलाम के बाद जब कुशलक्षेम पूछी जा चुकी तो मैंने पहिले पूछा कि यह लड़का कबसे अन्धा हुआ है ? उन्होंने कहा मेरे तीन लड़के हैं। एक यह, एक इससे बड़ा और एक इससे छोटा। बड़ा और छोटा दोनों हर तरह से तन्दरुस्त हैं व सूझते हैं, यह मां के पेट से ही अन्धा पैदा हुआ था। मैंने कहा यह इस बेचारे का पिछले जन्म का कर्म भोग है वे तुरन्त बोले हमारे मज़हब में तो पुनः जन्म माना ही नहीं जाता। मैंने कहा तो फिर यह मानना पड़ेगा कि इस विश्व को पैदा करने वाला बड़ा अन्याई है, जिसने उसी मां से पैदा हुए दो बच्चों को तो सूझता बनाया और एक इस बच्चे को सारा जीवन कष्ट उठाने के लिये व दूसरों के आधीन रहने के लिये अन्धा बना दिया। वे चुप हो गये। कहने का तात्पर्य यह है कि संसार में ऐसे भी बहुत लोग हैं जो जन्म मरण के रहस्य को ही नहीं जानते। फिर उनका

लक्ष्य जन्म मरण से मुक्ति का कैसे होगा, हो ही नहीं सकता। ऐसे लोग अधिकतर उन देशों में पाये जाते हैं जिनकी राजनीति साम्राज्यवादी होती है।

२. मध्यम कोटि के लक्ष्य :—

मध्यम कोटि के लक्ष्य वाले लोग, दूसरों का जीव, अपने जीव के समान जानकर, संसार के सभी प्राणियों के साथ मनुष्यता का व्यवहार व व्यापार करते हैं। ऐसे लोग संसार में कम तादाद में हैं। यानी इस लक्ष्य वाले मुसाफिरों की संख्या नीची कोटि के लक्ष्य वाले मुसाफिरों की संख्या से बहुत कम है। ऐसे लक्ष्य वाले लोग मानव जाति का हित करते हैं। आज के युग में, आपत्तियों, विपताओं, लड़ाई झगड़ों व नाना प्रकार के दुःखों की बहुतायात से घबराकर अब कहीं २ लोग मानवता की चर्चा करने लगे हैं या मानवता की चर्चा होने लगी है। बड़े २ नेताओं को भी अब सूझने लगा है कि संसार में बिना मानवता लाये, दुखों, क्लेशों से नहीं बचा जा सकता। कुछ पुस्तकें भी इस विषय को लेकर लिखी गई हैं जिनमें कुछ भारत के लोगों ने लिखी हैं व कुछ रूस के लोगों की लिखी भी मैंने पढ़ी हैं। भारत की सरकार

संसार में, मनुष्यता लाने के पीछे पड़ी है। ऐसा लक्ष्य अधिकतर उन देश वासियों का होता है, जहां की राजनीति सामाजवादी होती है।

३. उच्च कोटि का लक्ष्य :—

जन्म मरण से मुक्ति का लक्ष्य उच्चकोटि का लक्ष्य कहलाता है। इस लक्ष्य को लेकर चलने वाले मुसाफिरों की संख्या बहुत कम है। इस उच्चकोटि के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अत्यन्त ऊंची शिक्षा व काफी ऊचे साधनों की अवश्यकता होती है। अनुभवी महान्भावों का कहना है, जो काम सही आदमी, सही ढंग से सही समय पर सही जगह पर, करता है उस कार्य में अवश्य सही सफलता प्राप्त होती है।

इस लक्ष्य को पूरा करने के लिये वही मनुष्य उपयुक्त या सही समझा जाता है जिसको कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा ही नहीं बल्कि सच्ची तड़प हो और सही समय और सही जगह और सही ढंग इस लक्ष्य को प्राप्त करने का, कोई मोजूदा (जीवित) सन्त सतगुरु ही बता सकता है, जिसने अपने जीवन काल में ही जीवन मुक्त

अवस्था प्राप्त कर ली हो। ऐसे सन्त सतगुरुओं का आजकल बहुत अभाव है, परन्तु जिनको सच्ची तड़प होती है उनको *Demand & Supply* के सिद्धान्त के अनुसार ऐसा गुरु मिल ही जाता है। गुरु ऐसा मिल जाने पर भी जरूरी होता है कि उसके बताये हुए मार्ग पर दृढ़ता पूर्वक चला जाय और अपने लक्ष्य यानि जीवन मुक्त अवस्था की प्राप्ति की जाय। यह भी याद रखना होगा कि उस लक्ष्य की प्राप्ति अगर मनुष्य ने अपने जीवन काल में न की तो मरते समय जबकि शरीर में त्रिदोष आदि के रोग से मनुष्य ग्रसित होता है, इसकी प्राप्ति नहीं की जा सकती।

जाको दर्शन इत है वाको दर्शन उत्त।
जाको दर्शन इत नहीं वाको इत न उत्त॥

ऐसा लक्ष्य उनका होता है जो मानवता के नियमानुसार अपना साँसारिक जीवन व्यतीत करते हैं और जन्म मरण के रहस्य को जानते हुए मुक्ति की अभिलाषा करते रहते हैं।

जीवन मुक्त अवस्था के विषय में अधिक जानकारी के लिये सन्तमत लेखमाला के प्रथम भाग के पुष्प नम्बर ३-४ और ५ पढ़ें।

परम दयाल जी महाराज का अनुभव

छटा अध्याय सुना मन में बड़ा हर्ष हुआ। यदि कहदू 'कृषक जिन्दाबाद' तो गलत नहीं होगा।

यह युग विज्ञान का है। शिक्षित लोग पुराने कथनों को इतना ध्यान नहीं देते। मेरी समझ में सन्तों का तथा हरेक मानव का जो निज रूप है वह ईश्वर, परमेश्वर, खुदा, गुरु, शब्द, प्रकाश से परे है। यह सारा संसार जिस तत्व से बना है उसे तो कोई जान नहीं सकता न देख ही सकता है। हां उसके हैपने और प्राकट्य को शब्द से जाना जा सकता है। विज्ञान ने सिद्ध किया है कि सभी वस्तुएं शब्द और प्रकाश से बनी है। प्रकाश या शब्द कोई दो वस्तु के टकराने से प्रकट होता है। अब उस तत्व जो सबका आधार है उस तक जाने का या उसको अनुभव करने का यदि कोई मार्ग है तो यही है कि आदमी अपने अन्तर में प्रकाश देखता हुआ तथा शब्द सुनता हुआ उसमें लय होने का प्रयत्न करे। तभी उसे सच्चे नाम या खुदा का अनुभव हो सकता है।

जिस तरह मानव का देह तो एक है किंतु अंग अनेक हैं और सभी अंग अपना अपना काम करते हैं, इसी प्रकार वह तत्व एक है, ज्ञात एक है। यह प्रकाश शब्द उत्पत्ति और विनाश की शक्तियां सभी उसके भाग हैं उसी में रहते हैं। इसलिये सन्तों का पता नहीं, मैं जो समझता हूं यह है कि वह एक तत्व है उसी का सारा प्राकटय है, उसी का सारा खेल है। जब ऐसा अनुभव हो जाता है तो प्रगट रूप में किसी ईश्वर, परमेश्वर की पूजा आदमी नहीं करता। वह तो इस संसार में ऐसे रहता है जैसे मछली पानी में रहती है।

—※—

पुष्प नं० ८

सिंहावलोकन तथा नम्र निवेदन

सन्तमत लेखमाला का प्रथम भाग "मानव मन्दिर" के जुलाई १९७५ संख्या ३ में प्रकाशित हुआ। जिन २ महानुभावों के पास यह लेखमाला पहुंची है, उनमें से कुछ ने बिना इस पुस्तक के आशय के जाने मुझे बहुत से पत्र लिखे हैं तथा ऐसे प्रश्न

किये हैं जिनका उत्तर उस पुस्तक में पूर्ण रूप से दिया हुआ है। उन सज्जनों से मेरा निवेदन है कि वे उस पुस्तक को और कई बार पढ़ें और आशय को समझें। मुझे केवल उस सूरत में प्रश्न लिखें जबकि इस पुस्तक में उन्हें उनके सवाल का उत्तर न मिले। क्योंकि वृद्धावस्था के कारण मुझे कम दिखाई देता है और लिख पढ़ नहीं सकता, और न मेरे पास कोई ऐसे उपयुक्त साधन हैं जिससे लेखनी द्वारा उनके प्रश्नों का समाधान किया जाय।

कुछ सज्जनों ने प्रश्न किया है कि उनके गुरु चोला छोड़ गये वे क्या करें। उनसे मेरा निवेदन है कि कोई मुर्दा गुरु उनकी रहनुमाई नहीं कर सकता इसलिये यदि वास्तव में उद्धार चाहते हैं तो जीवित गुरु का सहारा लेना होगा। किन्हीं २ महानुभावों ने लिखा है कि वे कट्टर सनातन धर्मी हैं या और किसी धर्म में आस्था रखते हैं। उनसे मेरा निवेदन है कि सन्तमत न तो किसी मत का पक्षपाती है और न किसी मत का विरोधी है। यदि उन्हे संत मत की शिक्षा से वास्तविक लाभ उठाना है तो कट्टरपना, जिससे कि अहंकार पैदा होता है छोड़ना पड़ेगा।

किसी २ महानुभाव ने लिखा कि उन्हें जन्म मरण से मुक्त होने की बड़ी जिज्ञासा है और मुझसे कुछ परामर्श मांगी है। ऐसे जिज्ञासु महानुभावों से प्रार्थना है कि जो कुछ मैंने अब तक संत मत की शिक्षा के बारे में जाना और संतों के बताये मार्ग पर चल कर अथवा साधन कर जो अनुभव प्राप्त किया संत मत लेख माला के प्रथम भाग में काफी हद तक दे दीया था और जो शेष है इसके दूसरे भाग में दे रहा हूं।

जो कुछ इन संतमत लेखमाल के दोनों भागों में दिया है, उससे अधिक मुझे संतमत की जानकारी नहीं है और न इससे अधिक अनुभव ही प्राप्त है।

नाट :—पाठकों की सुविधा के लिये अब इस संतमत लेखमाला का तीसरा भाग लिखा जा रहा है। इस भाग में उन शब्दों की, जिनको कि संतजन अपनी वाणियों में प्रवचनों में, तथा लेखों में प्रयोग करते हैं और जनसाधारण कम पढ़े व्यक्तियों या अपढ़ लोगों की समझ में नहीं आ पाते, उन शब्दों की सरल व्याख्या सरल (आमफहम) भाषा या बोली में दी जाये गी।

इति शुभम्।

सुरत

लेखक : सेठ दुर्गादास साहिब, चण्डीगढ़ ।

कुल और कुल के अंश में कोई अन्तर नहीं पाया जाता है। कुल और जुज़ एक ही प्रकार के होते है। दोनों की अवस्था एक होती है। अंश कुल में खूब मिल जाया करती है अर्थात दोनों मिलकर एक जात हो जाया करते हैं तो इसमें कोई अन्तर नहीं रहता बल्कि वही अंश कुल से जुदा नहीं की जा सकती है।

सागर और इसकी बूंद का उदाहरण लीजिए जो तत्व सागर में पाये जाते हैं वही तत्व एक बूंद में भी मिलेंगे। यदि बूंद सागर से मिल जाये तो उसी बून्द को सागर से अलग करना असम्भव है। हां, और कतरा जुदा किया जा सकता है। यदि ज़ात नाशवान है तो अंश भी नाशवान होगी, यदि ज़ात की हस्ती अलख, अकह, अगम है तो अंश की भी वही अवस्था होगी।

ज़ात से इसकी अंश ही जुदा हो सकती है। इसलिए अंश की हस्ती ज़ात से जुदा नहीं है। सुरत

का खिचाव ज़ात की ओर सदा रहेगा जैसे चुम्बक लोहे को खींचता रहता है। क्योंकि सुरत ज़ात से अलग हुई है।

सुरत समानी शब्द में ताको काल न खाय।

सुरत शब्द में समा गई। शब्द में इसलिए समा गई कि उसकी अंश थी। सवाय अंश के ज़ात में कोई दूसरी वस्तु नहीं समा सकती है। प्रकृति या मन शब्द में लै नहीं हो सकता है। प्रकृति प्रकृति में लै होगी और मानव मन ब्रह्माण्डी मन में लै होगा। सुरत क्योंकि ज़ात को अंश है इसलिए ज़ात में समा सकती है। जब एक बार अंश ज़ात से मिल गई फिर वही सुरत ज़ात से जुदा नहीं की जा सकती है अर्थात सुरत पर काल का हमला नहीं हो सकता है। सुरत नाशवानहोने वाली नहीं है। सुरत और शब्द में कोई अन्तर नहीं है।

इसलिए ऐ जीव, यदि तू आवागवन से बचना चाहता है तो इस जीवन में स्थूल शरीर, मन इन्द्रियों और प्रकाश से अलग होने का अभ्यास कर, जब सुरत शब्द में लै होने लगेगी तो समाधि की दशा पैदा होगी, यही मोक्ष है अर्थात जीवनमुक्त अवस्था है।

स्वामी जी महाराज फरमाते हैं :—

एक बार ए मौज जरूरी।

मौज हुई तो सुरत ज़ात से पैदा हो गई। लेकिन स्वामी जी महाराज फरमाते हैं। यह मौज केवल एक बार हुई फिर दोबारा ऐसी मौज न होगी। (इसका यह भाव हुआ) अर्थात बून्द सागर से एक बार ही अलग की जा सकती है। बून्द का सागर से मिलने पर इस बून्द को हस्ती समाप्त हो जायेगी फिर वही बून्द दोबारा पैदा न होगी।

आवागवन से छुटकारा है, है, है।

सुरत हुई अति कर मगनानी, पुरुष अनामी जाय समानी।

इसलिए सुरत अजर, अमर और अविनाशी है। सुरत का कोई अन्त नहीं है केवल यह पुरुष अनामी में समा गई। अद्वेत हो गई।

जिस पद को अनामी पद कहा जाता है वह शब्द का स्थान है। सन्तमत में और अध्यात्मिकता में सब से ऊंचा दर्जा अनामी पद को दिया जाता है। इस पद को अनामी इसलिए कहा गया है क्योंकि वहां शब्द गुप्त रूप में है, प्रगट नहीं है। शब्द जहां ठहरा इसको सुरत कहा। इसलिए कहा गया है :—

शब्द सुरत दोऊ एक समान, पुरुष अनामी के ये है प्राण।

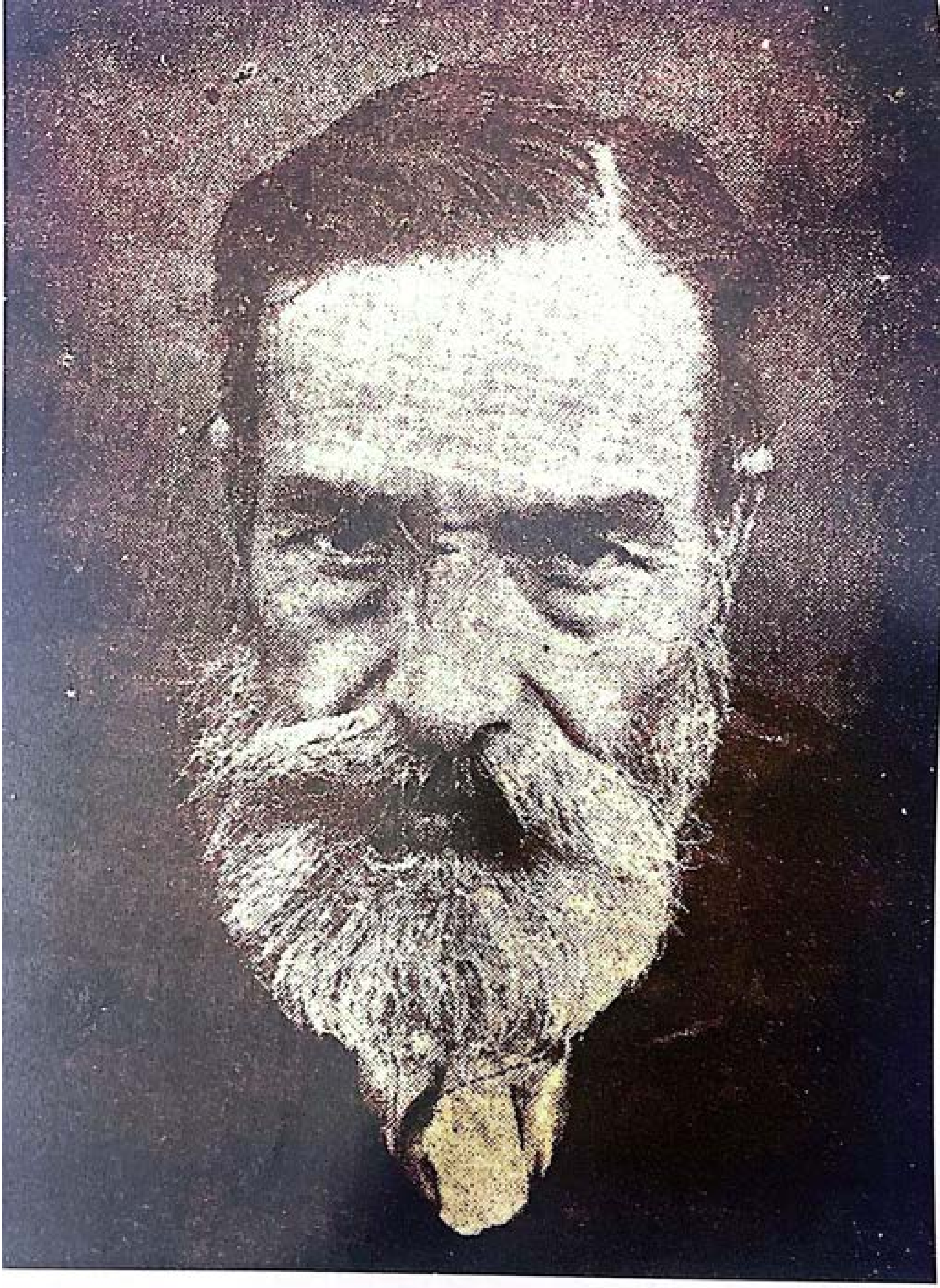
शब्द जब प्रगट हुआ तो इसका आकार बन गया। जब शब्द गुप्त था तो अनामी था।

शब्द गुप्त तब रहा अनाम, शब्द प्रगट तब धरया नाम।

ब्रह्मण्ड की सारी लीला शब्द से प्रगट हुई। शब्द ही स्वामी है, शब्द ही अनामी है, शब्द सर्वत्र है। शब्द सुरत में ठहरा। शब्द और सुरत में कोई भेद नहीं है। सुरत शब्द का अंग है। सुरत शब्द से अलग नहीं है। सुनिए! कबीर साहिब फरमाते हैं :-

रंन समानी भानू में, भानू आकाशे माहीं।
आकाश समाना शब्द में, शब्द परे कुछ नाहीं॥
सुरत शब्द की डोर है, तुझे उतारे पार।





रहबरे राहे हकीकत, मसनदे आली मुकाम।
अपने वचनों से सुनाया, जग को तू हक का पयाम।।

Mind and its measurings
(मन तथा माया)

May your mind find peace and stability as you meditate and reflect deeply on each excerpt!

1.

माया का रूप जो मेरी समझ में आया है वह यह है कि जो वस्तु या जो विचार मेरी सुरत को अपनी ओर खेंच कर अपने प्रभाव को मुझमें बिठा देते हैं वह माया है। हम दुनियाँ में रहते हैं, इसके प्रभाव प्रभावित करते हैं, अपने अन्तर अनेक प्रकार के भाव विचार, रूप रंग रेखायें देखते हैं और इनमें दिलचस्पी लेते हैं या निराश होते हैं, यह सब माया है।

2.

बाहर की दुनियां के संस्कार स्थूल माया हैं। अन्तरी खेल झीनी माया कहलाती है। इतनी आयु के बाद महसूस करता हूँ कि मेरे जीवन का सारा खेल माया ही निकला। दुनियाँ से वैराग हुआ। अपनी अंतरीय सूक्ष्म रचना, योग की श्रेणियां, प्रेम भक्ति की भावनायें, ऋद्धि सिद्धि के चमत्कार क्या सिद्ध हुये ? माया।

3.

चूँकि मैं किसी के अंदर नहीं जाता और दूसरे के अंदर उसकी अपनी कल्पना से या रेडियेशन से मेरा रूप काम करता है तो मुझे विश्वास हो गया कि समस्त योगी, भक्त, ज्ञानी ध्यानी ऋद्धि सिद्धि वाले सब के सब इस माया के चक्र में हैं और मैं भी इस चक्र में रहा हूँ।

4.

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरिया, और तुरियातीत अवस्थायें सब की सब माया ही हैं। सोचता हूं कि ऐ फकीर क्या तू निकल गया? 'हाँ' और 'नहीं।' 'हाँ' इसलिये कि मुझे इसका अर्थात् माया का रूप पता लग गया। जब तक देह और मन तथा बाह्य लोक का जीवन है तब तक इस माया का खेल होगा, होता रहेगा। कोई रोक नहीं सकता। केवल इस ज्ञान से कि मेरा निज स्वरूप अलग है और उसके सहारे यह खेल होता रहता है, मैं इस माया में रहता हुआ माया के प्रभाव से प्रभावित नहीं होता और कोशिश करता रहता हूं कि अपनी सुरत को वहाँ ठहराये रक्खूँ या उस नुक्ते का सहारा लेता रहूँ जो मायातीत है। कभी कभी जब अकेला होता हूँ तो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भान-बोध को भूल कर उस शब्द के भंडार में ठहरता रहता हूं।

5.

माया मैंने क्या समझी है। मेरे मन के अंदर से जितने विचार अच्छे या बुरे जो निकलते हैं यह माया है। इससे मेरा बचाव हो गया। मुझे समझ आ गई कि जो कुछ भी सोचता हूँ, लिखता हूं, बात करता हूँ यह सब माया है। सुमिरन ध्यान भजन भी माया है।

6.

माया तो ठगिनी भई, ठगत फिरे सब देस।
जा ठग ने ठगिनी ठगी, ता ठग को आदेश॥

सब प्रकार के विचार सांसारिक या परमार्थ के सब माया ही हैं। यह हमारी सुरत को अपनी ओर खींचते रहते हैं। दुनियाँ के व्यौहार मान प्रतिष्ठा आदि आदि व अंतरी दृश्य अपनी ओर खींचते हैं। गुरू के दर्शन या राम का प्रगट होना भी सुरत को अपनी ओर खींचता है। यह भी ठगिनी का काम है। जो इस ओर न खिचा उसने इस ठगिनी को ठगा। मैं मोटी माया छोड़ गया मगर झीनी माया से न निकल सका था। वह गुरु ज्ञान से मेरी समझ में आ गई। अब साधन में मेरी सुरत सीधी शब्द में चली जाती है। जहाँ मैं रहता हूं अब वहाँ सीधा शब्द में चला जाता हूं मगर यह अवस्था तमाम दुनियां की वस्तु नहीं है (अर्थात् सब के हिस्से में नहीं आती) पहिले मनुष्य मोटी माया में फंसे। जब इसका अनुभव हो जाय तब इसे छोड़ दे। फिर झीनी माया में फंसे, फिर छोड़ दे। जब तक मनुष्य फंसता नहीं और इसका अनुभव नहीं कर लेता यह माया छूटती नहीं है।

7.

माया छाया एकसी, बिरला जाने कोय।
भगता के पीछे लगे, सम्मुख भागे सोय॥

इस माया का रूप बहुत देर के बाद पहिचाना जाता है। चूँकि मैं समझ गया कि यह दृश्य जो प्रगट होते हैं और विचार जो उठते हैं कल्पित हैं, मैं अब इनमें फंसता नहीं

8.

कबीर माया पापिनी, भागे मिले न हाथ।
मनहुं उतारी झूठकर, लागी डोले साथ॥

जो विचार उठते हैं वह तो उठते ही रहेंगे। यह लाजिमी हैं। जीवन जब तक है संकल्प विकल्प साथ रहेंगे। माया साथ रहेगी। चूँकि ज्ञान है इसलिये उसका प्रभाव ग्रहण न करेगा।

9.

मोटी माया सब तजैं, झीनी तजी न जाय।
पीर पैगम्बर औलिया, झीनी सबको खाय॥

एक को गुरु बनने का ख्याल, भक्त को भक्ति का ख्याल, किसी को आनन्द की इच्छा, यह सब झीनी माया है। स्त्री को छोड़ना, धन सम्पत्ति छोड़ना यह मोटी माया है मगर—

झीनी माया जिन तजी, मोटी गई बिलाय।
ऐसे जन के निकट से, सब दुख गये हिराय॥

10.

झीनी माया जिन तजी, मोटी गई विलाय।
ऐसे जन के निकट से, सब दुख गये हिराय॥

जिसे अंतर का ज्ञान हो गया और झीनी माया छोड़ दी तो मोटी माया तो स्वयं ही जाती रही और दुख दूर हुये। जब इंसान अपने संकल्प में ही न फंसा तो दुख दूर हो गये। चूँकि इन संकल्पों को मायावी समझेंगे। फिर वह अपने आत्म स्वरूप में शब्द व प्रकाश में रहेंगे। यही बात शास्त्र कहते हैं मगर बिना अन्तिम अनुभव के यह माया छूटेगी नहीं।

11.

ऐ जिज्ञासुओ! शान्ति के इच्छुको! परमार्थ के चाहने वालो! जब तक किसीको अपने रूप का कि मैं कौन हूँ, पूरा ज्ञान नहीं होता, समझ नहीं आती उसमें गिरावटें आती रहेंगी और उसकी शक्ति को भंग करती रहेंगी। इसका इलाज केवल किसी विदेह पुरुष या वीतराग पुरुष का सत्संग है। उसकी बात को परमार्थ की चाह रखते हुये समझना है। यही गुरु मत है। सुमिरन, ध्यान, भजन आदि मन की चंचलताई को दूर करने के लिये हैं। यह इष्ट पद नहीं हैं। यह मैं क्यों कह रहा हूं? इसलिये कि अब मैं निज अनुभव के आधार पर ऐसा कहने को विवश होगया और सुमिरन ध्यान और भजन तीनों छूट गये। जब अकेला बैठता हूं तो इस अनुभव के आधार पर जो मुझको हुआ मेरी सुरत तुरन्त विस्माधि, उन्मुनि या अलख अवस्था में चली जाती है जहाँ सिवाय एक विशेष प्रकार के ठहराव के और कुछ नहीं है उस ठहराव में स्वाभाविक शब्द होता रहता है। वह निज नाम है वही सार शब्द है।

12.

सहजे ही धुनि होत है, हरदम घट के माहिं।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजत नाहिं॥

नोट– जो इस लाइन पर चलने वाले हैं वह इस अन्तिम अवस्था का जिक्र सुन कर घबरायेंगे कि उनको कब यह अवस्था प्राप्त होगी। कबीर की वाणी से उत्तर देता हूं—

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे केवड़ा, ऋतु आये फल सोय॥

मुझे देखो कहाँ १६०५ ई० और कहाँ १६६५ ई०! साठ वर्ष लगे। इस अवस्था तक असली सूरत में आने के लिये चले चलो। वीर बनो। इष्ट पद पर अवश्य पहुँचोगे, क्यों-कि यह हमारा आदि है। जीवन संग्राम है। चलते रहो। उस अकाल पुरुष, मालिके कुल, परमतत्व का विश्वास रहे।

13.

कबीर रन में आयके, पीछे रहे न सूर।
साईं के सन्मुख रहे, जूझै सदा हुजूर॥
गगन दमामा बाजिया, पड़ी निशाने चोट।
कायर भागे कुछ नहीं, सूरा भागे खोट॥

असल सतगुरु तुम्हारे अन्तर शब्द है। उसका सहारा लिये हुये अकाल पुरुष का विश्वास रखते हुये चले चलो।

हर एक मनुष्य इन शुभ गुणों को ग्रहण करना चाहता है मगर उसका अनुभव बतायेगा कि उसमें गिरावटें आती रहती हैं। मुझे आई। मैं अपनी कमजोरियों को हमेशा सत्संगों में कहता हुआ आ रहा हूँ। काम का अंग, क्रोध का अंग, लोभ का अंग, मोह का अंग आदि को छोड़ने की कोशिश करता रहा। बहुत कुछ छोड़ा मगर गिरावटें आती रहती। इस बुढ़ाप में आकर शान्ति मिली। इन से छुटकारा मिला।

विकारों से छुटकारा

वह छुटकारा किसने दिलाया? केवल इस अनुभव ने कि मैं कौन हूँ। जब तक यह समझता था कि मैं कुछ हूं चाहे बाप बना, बेटा बना, चेला बना, गुरु बना या कुछ और बना तब तक समय समय पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि मेरे चिदाकाश पर उठते रहे। यह मेरे जीवन का अनुभव है। जब से यह समझ में आ गया कि वह मालिक परमतत्व एक शक्ति है और यह 'मैं' उसकी हिलोर से बनती है और उसी में समा जाती है तब से इस अनुभव के पूर्ण विश्वास ने इन सब अंगों से छुटकारा दिलाया। यही बात सत कबीर ने कही है

15.

आगे कहते हैं :—

सूली ऊपर घर करे, विष का करै अहार।
ताको काल कहा करे, आठ पहर होशियार॥

यह सूली पर चढ़ना है। जो व्यक्ति इस राज (भेद) को समझ कर हर समय चौकन्ना रहता है और अपने आप को इन गुणों में फँसने नहीं देता और अपने आप को अपने स्वरूप से लगाये रखने की कोशिश करता है वही इस आवागमन के खेल से बच सकता है दूसरा नहीं। इसलिये अभ्यास के साथ सत्संग की आवश्यकता रहती है ताकि मनुष्य की सुरत को सावधानी मिलती रहे।

16.

यार बुलाये भाव से, मो पै गया न जाय।
घन मेल पिउ ऊजला, लाग न सक्के पाय॥

हम लोगों में कठिनता यह है कि हमारी सुरत पर मैला-पन रहता है। यह मैलापन केवल हमारी नाना प्रकार की वासनायें और इच्छायें हैं। चाहे अच्छी हों या बुरी। इसलिये एक दृष्टि से यह मार्ग महा कठिन है मगर जिनको जरूरत है अथवा जो जिज्ञासू हैं उनके लिये आसान है। वासना जब पैदा होती है अज्ञान से पैदा होती है। अज्ञान भ्रम है।

जिस कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साईं तो सम्मुख खड़ा, लाग कबीरा पाय॥

जब तक अज्ञान है और भ्रम है तब तक उस अवस्था को पाना कठिन है।

17.

जिसको भी इष्ट (माबूद) बना कर पूजता था वह वास्तव में मेरी अपनी कल्पना से बना था। यह मेरा भ्रम था और अज्ञान था। यह अनुभव मुझको सत्संगियों के अनुभव के बाद हुआ। तो जो कुछ बाकी रहा वह मालिक का रूप है। अपना निज स्वरूप है। कभी-कभी उसमें ठहरता हूँ मगर हमेशा के लिये ठहरना अभी तक असम्भव हो रहा है।

18.

जो आवे तो जाय नहिं, जाय के कहाँ समाय।
अथक कहानी प्रेम की, कैसे बूझी जाय॥

उस स्थान से जिसका जिक्र मैंने किया है जो तमाम कल्पनाओं से ऊँचा है वहां से कौन आता है? असल में न कोई आता है न जाता है। वह जो स्वयं निजस्वरूप है, परमतत्व है, उसको अपना रूप कहलो, कुछ और कहलो। जब उसका रुख नीचे की ओर होता है वह महसूस करता है कि मैं आया हूँ और जब अपनी ओर रुख करता है अर्थात् सुरत अपने स्वरूप की ओर रुख करती है या मालिक की ओर तवज्जह करती है तो उसका भ्रम कि मैं आया हूं समाप्त हो जाता है। वह भ्रम तब जायगा जब प्रेम की या लगन की या खोज की इन्तहा (पराकाष्ठा) हो जायगी। इसके पहले नहीं।

19.

कौन देश ते आइया, जाने कोई नाहिं।
वह मारग पावे नहीं, भूल पड़ी जग माहिं॥

हर एक मनुष्य अपनी अंतरी कुरेद को मिटाने के लिये विभिन्न रूपों में उसकी खोज करता है। कबीर साहब तो कहते ही हैं कि जगत में भूल है मगर मेरे अनुभव में भी आया है कि मैंने जीवन में जितना खेल खेला वह भूल थी। वह भूल इस पिछली उम्र में समाप्त हुई। भूल यही थी कि मैं उसको

कभी मंदिर में, कभी किसी रूप में, कभी किसी आकार में मान कर चलता था। आचार्य बनने पर अनुभव ने आँख खोल दीं।

20.

नांव न जाने गांव का, बिन जाने कहाँ जांव।
चलता चलता जुग भया, पाव कोस है गांव॥

हर एक आदमी उसको किसी न किसी रूप में मानता है। किसी ने जड़ कहा, जड़ का कोई रूप माना। किसी ने चैतन्य का रूप माना। अनुभव ने सिद्ध किया कि न वह जड़ है न वह चैतन्य है किन्तु इस से परे की हालत है जिसे संत अलख, अगम या अनाम का नाम देते हैं।

21.

सतगुरु दीन दयाल हैं, दया करी मोहि आय।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा आय ॥

यह भेद दाता दयाल ने मुझको दिया। वह शब्दों से या बातों से समझा समझा कर हार गये। अन्त में उन्होंने गुरु पदवी देकर मुझे यकीन करा दिया कि वह मालिक या वह वस्तु जिसकी मैं खोज करता था वह रूप रंग रेखा, साकार निराकार, जड़ चेतन से परे है। उसे किसी ने निज स्वरूप कहा, किसी ने मालिके कुल कहा, किसीने अकाल कहा, किसीने अगम कहा और किसी ने राम कहा।

22.

सबसे मैं पूछत फिरूँ, रहन कहे नहिं कोय।
प्रीति न जोड़े राम से, रहन कहाँ से होय ॥

रहन कहते हैं ठहराव को। किसी जगह हम कुछ दिनों ठहरते हैं। वह रहने की जगह बन जाती है। मेरा अनुभव बता रहा है कि सुरत हर समय चलती रहती है। कभी कहीं ठहरी कभी कहीं ठहरी। हर एक ठहराव के बाद उत्थान होता है। स्थायी रूप से ठहराव है अपने ही स्वरूप में, अपने ही आप में अथवा उस मालिक में। तो जब तक कोई सुरत इस भेद को समझ कर अपने आप में ठहर नहीं जाती उसे कहीं भी ठहराव नहीं है। मेरा लिखना लिखाना, सत्संग कराना, व्यवहार करना क्या है ? यात्रा या चलना ही तो है।

23.

चलन चलन सब कोई कहे, मोहिं अंदेशा और।
साहिब सों परिचय नहीं, पहुँचोगे किस ठौर॥

मनुष्य को जब तक इष्ट पद या अभीष्ट स्थान या मंजिले मकसूद का ज्ञान नहीं होता, जीवन यात्रा समाप्त नहीं होती। जन्म जन्मांतर बीत जायेंगे मगर ठहराव न होगा। यही आवागमन है। इसी से बचने का इलाज किसी कबीर जैसे महापुरुष के सत्संग से राज (रहस्य) को समझ कर सुरत का अपने आप में ही ठहराना और उसके लिये साधन करना है। जीवन के बहुत अनुभव के बाद मैं संत मत को या संतों के विचार को सत मानने के लिये विवश हुआ हूं।

24.

मैं अभ्यास करता आ रहा हूं। जब तक सुरत किसी जगह ठहरती है वह स्थान और है और सुरत और है। जब सुरत के तमाम सहारे टूट जाते हैं तो फिर जो वस्तु शेष रह जाती है वह सार तत्व है। वह अपना स्वरूप है। वह मालिक है। कहना कठिन! अमल करना कठिन!

25.

मुझे जब से यह अनुभव हुआ कि तू किसी के अन्दर जाता नहीं तब से इस अवस्था में ठहरने का साधन मेरे हाथ आया। वह साधन है केवल एक प्रकार का खिचाव। उस खिचाव का दूसरा नाम है प्रेम। इसलिये जिस में प्रेम नहीं है वह इस गति को प्राप्त नहीं कर सकता। इसके साथ ही है सत्संग, जहाँ से असलियत या सार भेद मिले। बिना सार भेद के मिले मनुष्य लाख कोशिश करे वह इस अवस्था को पहुँच नहीं सकता।

26.

इस अवस्था में जाने के लिये जब तक मन साथ में है पहुँचना कठिन है क्योंकि मन कुछ न कुछ गति करता रहता है, विचार उठाता रहता है; रूप बनाता रहता है। वह परे की अवस्था है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरिया, तुरियातीत में मन खेल करता है। सोचता हूँ कि इस मन से छुटकारा पाना क्या आसान है ? नहीं। अन्तःकरण के ऊपर जन्म जन्मान्तरों के भी उठते रहते हैं मगर चूँकि दाता दयाल (महर्षि शिव) के शुद्ध स्वरूप से संस्कार मिला हुआ है और उसका विश्वास हो चुका है इसलिये मेरे अन्तर भी मन काम करता है मगर उस ज्ञान से, उस उपदेश से मैं इसमें फंसता नहीं।

27.

अभी इस मन के चक्र से स्थायी रूप से अलग नहीं हुआ मगर आस है कि सतगुरु की याद हर समय साथ रही तो इससे निकल जाऊँगा। सतगुरु की याद क्या है? संसार को कुछ कहना चाहता हूं कि फकीरचन्द सतगुरु की याद या फकीरचन्द की दाढ़ी मूछों की याद असली और सच्चे सतगुरु की याद नहीं है। असली सतगुरु ज्ञान है, राज है, भेद है। यह फकीरचन्द की याद या फकीरचन्द के रूप की याद केवल मन के विचारों को छुड़ाकर एक ख्याल देना है और एक ख्याल का लेना प्रारम्भिक श्रेणी में अत्यन्त आवश्यक है। कोई गलत न समझे। श्रेणियाँ हैं। जब तक लड़का पढ़ता है तब तक पुस्तक, स्कूल और मास्टर की आवश्यकता है।

28.

घाट ही पानी सब भरें, औघट भरे न कोय।
औघट घाट कबीर की, भरे सो निर्मल होय॥

घाट से पानी भरने से अभिप्राय उस आनन्द को किसी सहारे से प्राप्त करना है। अन्तिम अवस्था में घाट यानी सहारा नहीं रहता क्योंकि वह जो आनन्द है वह वास्तव में हमारा अपना ही रूप है।

चलते चलते पग थके, निपट करारे कोस।
बिन दयाल झलका पड़े, का को दीजे दोस ॥

सब दुनिया ही उसकी खोज में सहारा लेकर चल रही है। कोई किसी ख्याल से आनन्द लेता है, कोई किसी सहारे से आनन्द लेता है। कोई सुमिरन के सहारे से, कोई ध्यान के सहारे से आनन्द लेता है। समय आता है जब वह सहारा टूट जाता है। तुम स्वयं देखो कि आनन्द लेने को कई बार सुमिरन करके सहारा लेते हो, कभी ध्यान से सहारा लेते हो मगर किसी समय लाख कोशिश करते हो न सुमिरन ही बनता है और न रूप ही बनता है, इसलिये जब तक कोई दयालु गुरु किसी को नहीं मिलता और वह भेद नहीं बताता, मनुष्य को अपने आप में आप सहारा लेने की या आनन्द लेने की शक्ति नहीं आती।

प्र०—कौन तुम्हारी ज़ात है, कौन तुम्हारा नाँव।
कौन तुम्हारा इष्ट है, कौन तुम्हारा गाँव॥
उ०—ज़ात हमारी आत्मा, प्राण हमारा, गाँव।
अलख हमारा इष्ट है, गगन हमारा गाँव॥

कबीर ने निर्णय कर दिया कि हमारा जो स्वस्वरूप है वह वह अवस्था हैं जो अजर और अमर है आत्मा। आत्मा क्या है? शब्द और प्रकाश का भंडार जैसा मैं ने अपने रात के स्वप्न में जो अवस्था थी उसका जिक्र किया हैं। हर एक आदमी का रूप शब्द है। वही अजर और अमर है। देह में रहते हुये उसकी धार नीचे देह में आती रहती है। उस धार का नाम प्राण है। प्राण की स्थूल अवस्था का नाम सांस है। इस आत्मा का इष्ट अलख है अर्थात् वह जो मेरे अंतर में शब्द और प्रकाश स्वरूप है। वह किसी ऐसी ओर अंतर में खिचा रहता है जिसका नाम और रूप नहीं।

वह जो केन्द्र है जिसकी ओर मैं मन और रूप रंग रेखाओं को छोड़ कर शब्द और प्रकाश का रूप होता हुआ खिचा रहता हूँ इस केन्द्र का नाम अलख है और यह खिचाव जब होगा दिमाग के अंदर रहने से होगा। इस अनुभव के आधार पर विवश मुझे कबीर की वाणी के साथ सहमत होना पड़ता है।

प्र०—कहाँ से आया जीव यह, किस में जाय समाय।
कौन डोर से चढ़ चला, कहो मुझे समझाय॥
उ०—सगुन से आया जीव यह, निर्गुन जाय समाय।
सुरत डोर ले चढ़ चला, सतगुरु दिया बताय॥

यह शब्द असलियत हकीकत की जान है। जीव गति उस समय तक है जब तक स्थूल देह है। अगर देह नहीं तो जीव पना भी नहीं है। प्रकाश की शक्ति या प्रकाश की किरणें स्थूल माद्दा को पैदा करती हैं। उसके क्षोभ से जीव पैदा होता है। सगुन अर्थात् देह के होने के कारण जीव दशा पैदा होती है और यह जीव दशा फिर निर्गुण अर्थात् मन में चली जाती है। यह रचना जो प्रकाश रूपी ब्रह्म से होती है इसका आधार सत है सुरत है। जीव गति जब समाप्त हो जाती है और सुरत गति जब निरत हो जाती है तो वह एक ही तत्व रह जाता है। अलग होने का भ्रम समाप्त हो जाता है। जिसकी सुरत बे सहारे होकर अपने निज स्वरूप में लय हो गई वह अंश से पूर्ण हो गया। वहाँ फिर खामोशी (मौनता) है। कहना सुनना सोच विचार सब समाप्त। गुरु चेला गायब।

32.

कोई बेअंत कहता है और कोई आपा या निज स्वरूप कहता है, उसकी गति का कबीर को भी पता नहीं लगा। जिस तरह मैं हैरान होता हूँ कि यदि वह नाम या चौथा पद, जहां देह और मन के भान-बोध समाप्त हो जाते हैं, ही इष्ट पद होता तो कबीर क्यों कहता—

साहब की गति अगम है, चल अपने अनुमान।
धीरे धीरे पाँव दे, पहुंचेगा परमान॥

कबीर साहब का कथन है कि अपने अनुमान से चलता रह। अपने अनुभव को सामने रखता हुआ अपनी तवज्जह को सामने रखता हुआ ऐ इंसान! तू चलता रह। किसी दिन पहुँच जायगा।

33.

बिन पांवन की राह है, बिन वस्ती का देस।
बिना पिंड का पुरुष है, कहैं कबीर संदेस॥

फिर वह मालिक न शब्द रूप है न प्रकाश स्वरूप है। शब्द भी देह है यद्यपि यह निर्मल चेतन है। प्रकाश भी अस्तित्व रखता है जो केवल चेतन्य है। मन भी देह रखता है, जिसमें विचार रूपी माया शामिल रहती है। देह तो है ही देह।

34.

जीवन किसी खोज में बीता व बचपन से सोचा करता था कि प्रीतम को मिलूंगा, राम को मिलूंगा। अब जीवन ने पलटा खाया। मैं क्या कहना चाहता हूं? न कोई राम मिला, न कोई कृष्ण मिला और न ही कोई गुरु मिला। मेरा अपना मन स्वयं ही गुरु बनता था, वही शिष्य बनता था, वही राम बनता था, वही कृष्ण बनता था। यही मेरी समझ में आया। जो बात मैंने कही वह प्रत्येक व्यक्ति समझ नहीं सकता जब तक कि वह स्वयं न दौड़े।

35.

और जो कुछ मैंने कहा, वही कबीर साहिब तथा स्वामी जी ने भी कहा कि जिस प्रीतम के लिए मैं सारा जीवन भटकता रहा कि मुझे राम मिल जाये, मुझे यह मिल जाये, मुझे यह मिल जाये। बहुत कुछ किया परन्तु पहुंचा कहां? जहां न राम है, न रहीम है, न करीम है, न मैं है, न तू है। एक प्रकार की अवस्था आ जाती है मगर वहां तक कौन जाना चाहता है? केवल वह जिसको इस बात

का विश्वास हो गया है कि मन रूपी चक्कर में वास्तविक सुख व शान्ति नहीं है । यह बिलकुल सत्य बात है ।

36.

प्रसन्नता चाहते हैं, उनको प्राप्त करो । उसके लिए जिसे तुम चाहते हो अपना एक इष्ट बना लो व जो भी चाह रखते हो वह इच्छा रख कर मन को एकाग्र किया करो और अपने आप को उसके समर्पित करते रहो । जितना तुम अपने अन्तर में प्रेम करोगे तुमको उतना ही लाभ होगा और कहीं फ़कीर चन्द या किसी भी गुरु के पास जाने की आवश्यकता नहीं । बाहरी गुरु वही है जो जीव को अपने अन्तर में ही विश्वास करा दे अर्थात् जो जीव को बहिर्मुखता से छुड़ा कर उसको अन्तर्मुखी कर दे । गुरु या राम सब कुछ तेरे मन के अन्दर है ।

37.

। इसलिए, ऐ मानव ! राम नाम बेशक न जप, तू अपनी नीयत को साफ रख । अपने स्वार्थ के लिए किसी के साथ धोखा, फ़रेब, चार सौ बीस तथा हेराफ़ेरी मत कर, यह ... है । यह बहरा है । मैंने यह काम

मैं किसी को शिष्य नहीं बनाना चाहता तथा न ही मैं चाहता हूं कि कोई मुझे पूजे। मुझे गरज (स्वार्थ) नहीं हैं। मैं आपको सरल ढंग बताना चाहता हूं कि कुछ न करो। मैं क्या करता हूं? कुछ भी नहीं। पहले बहुत किया। मैं भी परिश्रम करते-करते मर गया। अब तो यही कहता हूं। शरणागत। अत: जो व्यक्ति इस मार्ग पर सच्चा होकर चलता है बेशक वह यह चिन्ता न करे कि उसका शब्द खुला हुआ है या नहीं। ज्यों-ज्यों उसका मन साफ होगा जब वह अन्दर ठहरेगा उसका मन काम करना बन्द कर देगा तो अपने आप ही उसका शब्द खुल जायेगा। जब तुम अपने अन्दर सच्चे होकर चलोगे और प्रेम करके शरणागत होगे तो मन समाप्त हो जायेगा। जब मन समाप्त हो जायेगा तो अपने आप ही प्रकाश और शब्द आ जायेगा। इसमें परिश्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं, आपको सरल उपाय बता दिया। लेकिन यह भी जिसके भाग्य में मालिक की दया है वह ही इसे समझ सकता है।

39.

है, गुरु देता है यह सब कोई नहीं देता। जो कुछ किसी को मिलता है वह उसका अपना प्रेम है अपना ही विश्वास और अपनी ही श्रद्धा है। उसी का फल

40.

देखो, आज मैं आपको यही कहना चाहता हूं कि सच्चे बनो बिलकुल कुछ न करो। मैं अभ्यास के भी विरुद्ध हूं। सबसे पहले, अपने
(1) मन को सच्चा बनाओ, बस। चाहे तुम में लाख दोष हैं कुछ परवाह नहीं। जब अकेले बैठो अपने आप को सच्चे बना कर अपने दोषों को देख कर अपने आप
(2) को उसके शरणागत करो। बस! जब तक मन पवित्र
(3) नहीं है, मानव के मन के अन्दर प्रबल चाह और तड़प नहीं है तो कानों में उंगलियां डाल कर मर जाओ न तुम्हारे प्रकाश आयेगा न तुम्हारे मूर्ति या रूप आयेगा। ज्यों-ज्यों तुम सच्चे बनोगे तुम्हारे मन की मैल दूर हो जायेगी, तुम दस व्यक्तियों में बैठकर शब्द गा सकते हो वहां तुम्हारी मैल नहीं जायेगी।

41.

अपने मकान में अकेले बैठकर प्रार्थना किया करो। मैं यही करता हूं। जहां तुम सच्चे बने प्रकृति तुम्हारे लिए दरवाजा खोल देगी। मेरा तो खोल देती है मुझे और मालूम नहीं। मैं केवल अपनी

42.

कब गुरु मिलि हो सनेही आइ,
लोभ मोह का जार बना है, ता में रह्यो अरुझाय,
जाकी सांची लगन लगी है, सो वा घर को आइ।
सुरत समानी सबद कुंड में निरत रही लौ लाइ,
पिया बिनु यूँ प्यारी तलफै तलफ तलफ जिय जाय।

अब यदि कबीर होता तो मैं पूछता कि यह सन्त किसको पिया कहते हैं। मैं भी कभी पिया को मानता था। यह अज्ञान था। अरे प्रीतम तुम्हारा अपना ही आप है कोई दूसरा पिया नहीं, यह हमको

भ्रम है। मगर यह भ्रम जल्दी नहीं जाता। क्यों नहीं जाता? मन के अन्तर जो बिचार है जब तक यह साफ नहीं होंगे यह भ्रम नहीं जायेगा।

43.

यह जितना अभ्यास सहस्रदलकमल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न, भँवर गुफा इत्यादि हैं यह सब मन को निर्मल करने के लिए है तथा ये मन की ही अवस्थाएँ है। सहस्रदलकमल में भिन्न-२ प्रकार के ख्यालात मन से निकलते हैं। त्रिकुटी में केवल अपने इष्ट के साथ प्रेम अधिक हो जाता है तो वही मन साफ होता हुआ अनेकवाद को छोड़ कर, त्रिपुटी वाद द्वैतवाद और अद्वैतवाद को छोड़-२ कर इकट्ठा हो जाता है अर्थात् एक जगह ठहर जाता है। जब व्यक्ति प्रयत्न करता है तो मन छूट जाता है और आगे प्रकाश और शब्द है, शेष तुम्हारी ज़ात रह जाती है।

44.

आप लोग आ गये हैं। आज अन्तिम सत्संग है। मैंने आपको बहुत कुछ कह दिया। पहले संसार के मोह को छोड़ो। इस संसार में रहते हुए यदि संसार में फँसोगे तो दुःख उठाओगे।

हम लोग मोह, माया में फंसे हुए हैं। हाय मेरा बेटा, हाय मेरा बेटा! वो सोना जो कानों को दु:खाता है उसे मत डालो। पहले अपने मन की शान्ति है। मगर हम लोगों को माया ने इतना दबाया हुआ है जिसका कोई हिसाब नहीं। मोह में फंसे हुए हैं।

हम लोग दुनिया में फंसे हुए हैं। तो गुरु क्या करता है? बाहरी गुरु का क्या कर्त्तव्य है? तुमको सच्चाई बता करके तुम्हारे मन को इस चक्कर से निकाल देने की आवश्यकता है, और कुछ नहीं। मैं भी यही करता हूं। किसी के साथ, मोह न करो। अगर तुमने बच्चे का मोह छोड़ करके मेरे साथ मोह कर लिया तो क्या अन्तर है? किसी ने पुत्र के साथ, किसी ने गुरु के साथ मोह किया। मेरी बात को सोचो। कोई पुत्र के मरने पर पुत्र के मोह में रोया, कोई पत्नी के मरने पर रोया, कोई गुरु के मरने पर रोया। अन्तर क्या है?

करना कुछ नहीं । यदि अभ्यास नहीं बनता तो कोई परवाह नहीं, अकेले बैठो । अपने हृदय में सच्चे दिल से अपने आपको उस परमतत्त्व के अर्पित कर दो । जो त्रुटियां आपने की हैं उनको स्वीकार करो । जहां तुम्हारा मन साफ हुआ प्रकृति तुम पर स्वयं दया करेगी । बस, यह Law व नियम है और कुछ नहीं । जब मानव सच्चा होकर पुकार करता है तो उसके मन के अन्दर Vaccum हो जाता है और प्रकृति की दया उसे आकर पूरा करती है । मगर यह चमत्कार या काम उनके होते हैं जिनके मन निर्मल होते हैं। अतः मन की पवित्रता बहुत आवश्यक है। यह बात है ।

47.

अगर किसी के अन्दर के यह दृश्य मानलो नहीं खुलते तो घबराने की आवश्यकता नहीं सुमिरन, ध्यान का ध्येय तो मन की वृतियों को एकाग्र करना है। एकाग्रता की आवश्यकता है। अन्तर के दृश्यों का जितना खेल है यह सब इन्सान की शारीरिक प्रकृति के अनुसार होता है।

48.

इसलिए तुमको कहूंगा कि नजारों आदि की चिन्ता छोड़ कर दोनों आंखों के बीच में अपनी सुरत को गाड़कर वहां लम्बा लम्बा रा-धा—स्वा-मी करते हुए मन को स्थिर रखने का साधन जरूर किया करे और ध्यान भी जब करते हो तो गुरु मूर्त के मस्तक और आंखों को अपने अन्तर की आंख से देखते हुए उससे अपनी सुरत को गाड़ा करो। अगर इस सुमिरन से मन न ठहरे तो अपनी आंखें खोल कर नाक की कोंपली पर ध्यान लगाकर वहां रा-धा-स्वा-मी- ख्याल के साथ जपा करो। एक दो मिन्ट में सुरत ऊपर चली जाएगी और मस्ती आएगी फिर ऊपर आंखों के बीच में सुमिरन करो अगर यहां भी आपको असफलता हो तो नाम माला यानि अपने विचार को नाभि के स्थान पर हृदय

के स्थान पर धा, कंठ के स्थान पर 'स्वा' और नैनों के बीच में 'मी, से ऊंचा जाप किया करो जुबान से नहीं केवल ख्याल से।

49.

मन को एकाग्रता के विना वहम, भ्रम चले भी गये हुए हों तब भी एक प्रकार की अशान्ति रहती है। जब मन ठहरने लग जाएगा अपने अन्तर में प्रकाश और शब्द स्वयं प्रगट हो जाएगा।

50.

जब से मुझे उस घर का पता लगा तब से मैं प्रकाश और शब्द में जाता हूँ तथा वहां उस वस्तु को खोजा करता हूँ जो प्रकाश को देखती तथा शब्द को सुनती है। तो फिर मेरा मालिक कौन है? अकह, अपार, अगाध, अनाम, अकाल, निज स्वरूप तथा हमारा अपना आपा। वह है अवश्य, परन्तु उसको कहने का नियम नहीं। वह अनिवर्चनीय है।

51.

जब तक जीवन है मौज अधीन रहकर काम करते रहो। खेल खेलना है खेलते रहो। सत्संग करते रहो। अभ्यास के बारे में अधिक नहीं करना है। मन को शुद्ध करना है। कहा है—

'मन का हुजरा साफ कर,
जानां के आने के लिए।

जहां मन शुद्ध हुआ, विचारो में पवित्रता आई कि यह शब्द और प्रकाश स्वयं खुल जाते हैं। अभ्यास का गुरु यही है कि मन को शुद्ध करो। वासनाओं को अनुकूल बनाओ। जब तक यह नहीं होता, साधन पूरा नहीं हो सकता। यह मेरे जीवन का अनुभव है। शब्द और प्रकाश जो खुलते हैं यह सब मन की वासनाओं के अनुसार खुलते हैं क्योंकि शब्दों का खुलना स्वाभाविक है प्राकृतिक है। जैसी वासना होगी वैसा शब्द प्रगट होगा।

52.

उस पूरा कर ... प्रशंसा की खुशी नहीं। बुराई से घृणा नहीं। अब अन्तिम परिणाम मेरा क्या हो रहा है वह कबीर की बाणी से सुनो—

सखिया वा घर सबसे न्यारा,
जहं पूरन पुरुष हमारा ।।टेक।।

जहं नहिं सुख दुःख सांच झूठ नहिं,
पाप न पुन्न पसारा।

नहिं दिन रैन चन्द नहिं सूरज,
बिना जोति उन्जियारा ॥ 1 ॥

घण्टा, शंख, मृदंग की आवाजें प्राकृतिक आवाजें हैं। जब चित्त वृत्ति को इकट्ठा करते समय साधन करने वाले के अनाविष्कृत मन (Sub-Conscious Mind) में सांसारिक पदार्थों की वासनायें होती हैं तो वृत्ति के इकट्ठा करने में शरीर के ल पदार्थोस्थू में गति होती है और उससे जो आवाज या श ब्द होता है वह घण्टा या शंख के शब्द के समान होता है।

जिसके मन में वासनायें नहीं रहती उनके अन्तर में घण्टा शंख कैसे बज सकता है? 'ओ३म्' का शब्द त्रिकुटी के स्थान पर होता है। सन्त मत में वहां गुरु मूरति का ध्यान होता है। उस समय प्रेम की लगन लगी होती है और

विचार जो सूक्ष्म पदार्थ हैं अन्तर में इकट्ठे होते हैं तो ओ३म् या मृदग की ध्वनि सुनाई देती है जिस तरह कि बादल इकट्ठे होकर गर्ज खाते हैं।

जब मानसिक प्रेम खतम हो गया तब फिर यह ध्वनि सुनाई नहीं देगी। जब पहिली श्रेणा के शब्द मेरे अन्तर में प्रकट न हुए तो मुझे शङ्का होने लगी कि इतना अभ्यास किया फिर भी तू ।गर गया। यह मेरा भ्रम था, क्योंकि अब मुझे दोनो अवस्थाओं का अनुभव है। चूंकि मेरी स्थिति पहिली जैसी नहीं है। इसलिए निचली श्रेणी के शब्दों का होना स्वाभाविक है।

54.

कितने ही सत्संगियों को शिकायत है कि अभ्यास नहीं बनता। उनको बताता हूं कि जैसे-जैसे बाह्य प्रभाव तुम्हारे विचारों के अनुसार तुम्हारे अनाविष्कृत मन **(Sub-Conscious Mind)** पर पड़े हैं, वह वहां मौजूद रहते हैं। इसलिए जैसी वासना होगी वैसा शब्द होगा। जब ऐसी अवस्था हो तो घबराना नहीं चाहिए। जब तक तुम मन की वासनाओं, कामनाओं, से परे नहीं होते तब तक अभ्यास में समता एक रसपना कभी नहीं रहेगा। इस समता को लाने का इलाज यह है कि विचार के साथ विचारों को शुद्ध करने का कोशिश करो और मूल कारण को ज्ञात करो, जिसके कारण अभ्यास नहीं बन रहा है। यह अच्छी तरह समझ लो कि तुम्हारा अभ्यास तुम्हारे भाव और विचारों के अनुसार बनेगा।

55.

लोग शब्दों के जाल में फंसे हैं। शब्द किसी भाव को लेकर गढ़े जाते हैं दूसरों को बात सुनाने को अपनी ओर आकर्षित करने को। यह राधास्वामी टैकनीकल शब्द है। मैंने मानवता का शब्द प्रयोग किया है। अन्तर में वृत्ति का पूर्ण रूपेण टिकाने की अवस्था का नाम राधास्वामी है। दसरे शब्दों में यों कहो कि वृत्ति को अपने अन्तर ठहराने से ही परम शान्ति मिलेगी।

56.

उनका भी आवश्यक है जो ...

पद निर्वाण क्या है? सुनो! मैंने अभ्यास किया है। अब भी शब्द और प्रकाश का साधन करता हूं। शब्द सुनते सुनते अशब्द और अप्रकाश गति में चला जाता हूं मगर उसके बाद फिर उत्थान होता है। सुरत और मन को कहीं भी लगाओ वहां से उत्थान होगा। अब साधन करने के पश्चात मुझे यह ज्ञान हो गया कि मेरा आदि क्या है? और यह कि मैं ऐसी अवस्था से आया हूं जहां न मैं न तू, न शब्द न प्रकाश, न राम न कृष्ण, न पीर न पैगम्बर, न गुरु न चेला, कुछ नहीं हैं। केवल खामोशी (Silence) है। इस अवस्था के बाद राधास्वामी दयाल ने भी कहा है कि मैं भी चुप होता हूं।

57.

मन फंसाने वाला व तारने वाला दोनों है

देखो! यह तुम्हारा मन ही है जिसने तुम्हें भरमा रक्खा है और तुम्हारा रक्षक और भक्षक बना हुआ है। दुनियां को दुःखी और सुखी बना रखा है। इसलिए इसे गुरु के अर्पण कर दो तो शिव संकल्प के अनुसार सुधर सकता है। जो जीवन को सुधार सकता है वह मन ही है। मन से आवागवन में आते हो और इसी से बचते हो। मन ही साथी है। यदि साथी बुरा है तो अच्छे से अच्छा भी है। बिना मन के न दुनियां से पार हो सकते हों न फंस सकते हो। यही मन इसमें फंसाने वाला और निकालने वाला है।

58.

ब्रह्म ब्रह्म दुनियां कहती है। ब्रह्म का अर्थ है बढ़ना और सोचना। जो प्रकाश हम में है वही घट में रम रहा है। यही ब्रह्म है। मुझे बताओ ऐसा कोई देश है जहां प्रकाश के बिना दुनियां बन रही हो ? सब जगह प्रकाश ही प्रकाश है। मुझे और कोई प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता। अतः ब्रह्ममय होने को शब्द और प्रकाश का साधन है।

59.

मनुष्य का जीवन उसकी मनन शक्ति से होगा। जब बुद्धि पैदा होती है तब चैतन्यता का ज्ञान होता है। यदि बुद्धि न हो तो उसका भान न होगा। मन है सूक्ष्म शरीर। यह मन ही काल है मन ही माया है। जब जीवात्मा ने जीवन में विचार से नहीं किन्तु अनुभव से

बहुत सा मरहला अवश्य ज्ञान प्राप्त कर लिया तो यह हल हो जायगा मगर मन को पूर्ण दमन करने पर जो उसकी अपनी अवस्था बाकी रही जब तक उस अवस्था में वह स्वयं नहीं जायगा तब तक उसका आवागवन छूट नहीं सकता। ज्ञानियों को भी आवागवन हो जाता है। किन ज्ञानियों को ? जो मनन शक्ति से अपने रूप का असली तौर से ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं मगर अपने स्वरूप का अनुभव नहीं करते। साधन से मन को खतम करने के बाद जो अवस्था बाकी रह जाती है वह कहने सुनने का विषय नहीं। वह वर्णन में नहीं आती। वह चेतन अवस्था है। उसको अनुभव करो।

60.

खेलना और चीज़ है और फंसना और चीज़ है। दुनियां में खेलने या काम करने के बिना तो गुज़ारा नहीं, मगर उस खेल में फंस जाना, आसक्त हो जाना, मोह ग्रसित हो जाना, ममत्व हो जाना गलत है। हम भाई को भाई समझें, बाप को बाप समझें मगर मोह ग्रस्त या आसक्त न हों। जब तक जीवन हैं मन रहेगा। उसे मार नहीं सकते। उसमें खेलो मगर अपने रूप को पहिचान लो नहीं तो संसार के कष्टों से और जन्म मरण से बचाव नहीं है। स्वामी जी का शब्द सुनो

61.

इस दृष्टि से विचार करो कि जितने भक्त उपासक हैं उनकी भक्ति और उपासना मन से होती है। क्या वे उसमें पचे या फंसे नहीं रहते ? आज उपास्यदेव के दर्शन हो गये तो प्रसन्न वर्ना अप्रसन्न।

62.

इस सिलसले में मैं अपने अनुभव के आधार पर कहता हूं कि जो लोग अच्छे आचरण वाले होते हैं और वासना रहित होकर शरीर छोड़ते हैं उनका मन बना रहता है। सन्त मार्ग में इस अवस्था का नाम है महा सुन्न।

ऐसे लोगों का सूक्ष्म शरीर निर्वासना होता हुआ ब्रह्माण्ड में रहेगा क्योंकि उनका शब्द और प्रकाश खुला नहीं है। ऐसे जीवों को जो महासुन्न में रहते हैं वासना रहित हैं तो जब कोई सन्त उधर से जाता है चूंकि वह शब्द और प्रकाश से ब्रह्माण्ड में जाता हैं, तो उनको अपने साथ ले ले जाता है। यह इसी प्रकार है जैसे छोटी बत्ती जल रही है वहां बड़ा बल्ब लगा दो तो वह बड़े की रोशनी में लय होकर उसका रूप हो जायगी।

63.

प्रश्न---राधास्वामी नाम का क्या अर्थ है ?

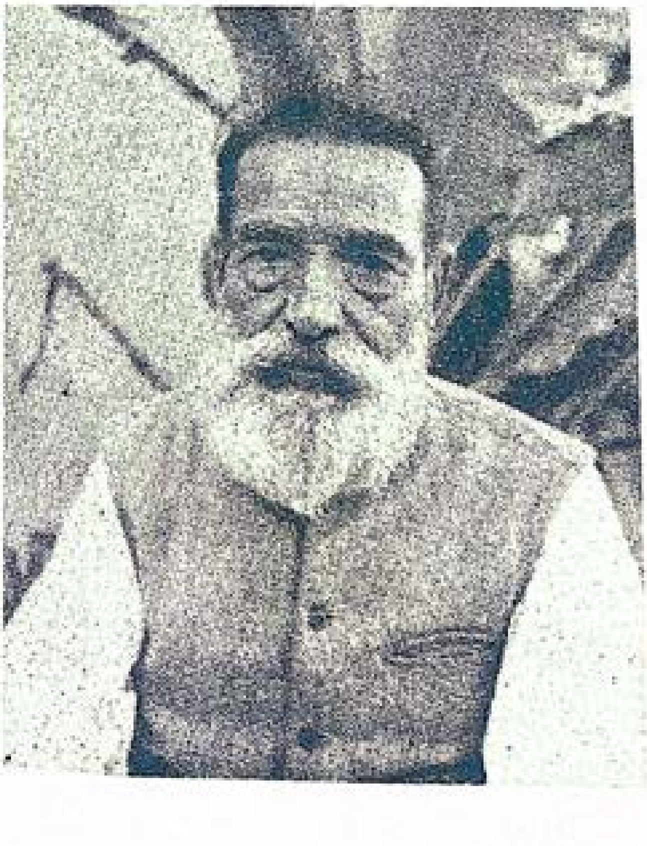
उत्तर---राधा आदि सुरत का नाम।
स्वामि आदि शब्द पहिचान॥

गरुड़ पुराण में शब्द ब्रह्म का उल्लेख है। यह झगड़े सब शब्द के हैं। यह राधास्वामी वास्तव में धुनात्मक नाम है जो हमारे असली तत्व की गति की आवाज (शब्द) है। आवाजें तो अनेक हैं मगर वह स्थूल,सूक्ष्म और कारण प्रकृति की गति का परिणाम होती हैं। इसी अन्तरीय धुनात्मक नाम के सुनने से मनुष्य की तवज्जह (सुरत) थिर हो जाती है। तब उसको असली, सच्चा और पूर्ण ज्ञान होता है।

देखो ! यह प्रतिदिन के व्यवहार में दे ते हो कि जब जाग्रत अवस्था में होते हो काम करते रहते हो। जब सोने लगते है तब मन अनेक प्रकार के स्वप्न देखता हैं। कोई अच्छे स्वप्न देखता है। कोई बुरे और भयावने, कोई सांप, बिच्छू, शेर भेडिया आदि देखता है कोई बड़बड़ाता है कोई गंदी नालियों में गिरता पड़ता है और कोई अनेक प्रकार की यातनायें भोगता है। कहने का अभिप्राय यह है कि मन पर जैसे-२ संस्कार पड़े होते हैं चाहे वह प्रारब्ध कर्म के अनुसा हों अथवा वाहय जगत में देखने, सुनने और कर्मों के कारण हों, इन सबकी फिल्म दिमाग पर पड़ती रहतीं हैं और मन तरह-तरह के संकल्प बिकल्प उठाता रह ा है। स्वप्नावस्था में वह फिल्म चलती रहती है। जो दशा स्वप्न में होती है वही साधन में ह ती है। साधन में जो मन के ख्यालात होते हैं बे फिल्म बनकर सामने आते रहते हैं। बैठे अभ्यास करने और मन ले गया कहीं का कहीं। उस मन का या मन की उस अवस्था का नाम है यमराज। जो स्वप्नावस्था है वही अवस्था साधन में होती है और वही मरने के बाद होती है। मृत्यु के पश्चात् जो अवस्था होती है वह साधारणतया एक लम्बा स्वप्न होता है और हमारा प्रतिदिन का स्वप्न थोड़े समय का होता है।

हमारे तीन शरीर हैं :-स्थूल, सूक्ष्म, कारण। इनसे परे वह परम तत्व है जो इन तीनों में रहता है। स्थूल शरीर हमारा देह हैं। सूक्ष्म शरीर हमारा मन है। यह संकल्प का या वासना का केन्द्र है। कारण शरीर शब्द और प्रकाश है। वह आत्मस्वरूप है। जो वस्तु इनमें रहती है और इनकी साक्षी है वह हम हैं। वह परमतत्व है। संत उसे सुरत कहते हैं। जब तक कोई मनुष्य शरीर में रहता हुआ शब्द और प्रकाश का अनुभव करता हुआ परे नहीं जाता उसको त्रिलोकी का ज्ञान नहीं हो सकता।

सुरत का अपने रूप से गिरकर अपनी इन्द्रियों के स्थान पर आ जाना गिरावट कहलाता है। इस समय को गनीमत समझो। मेरे सत्संग और वचनों से लाभ उठाने का प्रयत्न करो। जैसे चोर दूसरे चोर को सुगमता से पकड़ लेता है वैसे ही मुझे समझो।



Problems in Practice

by Data Dayal Shiv Brat Lal Verman

अभ्यास में विघ्न

साधन के कई विघ्न होते हैं जो अभ्यास को समझ लेना चाहिये। अगर यह ज्ञात न होंगे तो फिर सम्भव है कि धोखे में पड़कर अपना काम बिगाड़ले।

पहला विघ्न निद्रा है। भजन करते समय प्रायः नींद आने लगती है क्योंकि चित्त की शान्ति और मन की एकाग्रता से इस निद्रा का आ जाना आश्चर्य की बात नहीं है। अभ्यासी नींद को लय अवस्था समझकर प्रसन्न हो जाता है और अपने साधन को सफल समझ लेता है यह गलती है। उसे चाहिये कि जब नींद आने लगे तो तुरन्त उठ खड़ा हो। दो चार क्षण चले फिरे और हाथ पाँव और मुँह आँख धोकर तब फिर अभ्यास में लगे।

दूसरा विघ्न आलस्य है। हाथ पाँव एक तरह पर शिथिल हो जाते हैं। काम करने को जी नहीं चाहता। इसका भी उपाय वही है कि चले फिरे।

तीसरा विघ्न प्रमाद है। अभ्यासी में किसी प्रकार का घमंड न होना चाहिये और न उसे अपनी सफलता पर गर्व करना चाहिये अन्यथा उन्नति रुक जायगी।

चौथा विघ्न सिद्धि शक्ति का आना है। सारी शक्तियाँ मन की एकाग्रता से आती हैं। यह समझकर उसमें अगर किसी प्रकार का चमत्कार आने लगे, तो उसकी ओर से चित्त को हटा रक्खे। यह माया के समान हैं और भरमाने और भुलाने वाले हैं।

पांचवा विघ्न अभ्यास की सफलता का भेद दूसरों को जताना है। इसकी बिल्कुल आवश्यकता नहीं हैं। यह एक ऐसी बात हैं जिसकी खबर दूसरों को नहीं हैं। अगर तुमने किसी से अपना हाल कहा और उसे विश्वास न आया तो वह तुमको धोखेबाज, बुद्धिहीन, गुमराह (पथभ्रष्ट) समझेगा और उसका ऐसा सोचना तुम्हारे विश्वास को हानि पहुँचायेगा। उसकी तरह तुम भी शका और संदेह में पड़कर व्यर्थ में अपनी हानि कर लोगे। वह क्या जानता हैं कि तुम पर क्या गुजर रही हैं। दूसरे अगर उसे विश्वास भी हैं तब भी स्वयं नर्बल हो जाओगे और प्राप्त की हुई शक्ति जिभ्या से निकाल कर नष्ट हो जायगी। किसी बाहर मुखी आदमी से अन्तर अन्तर मुखी बातों के कहने की आवश्यकता क्या है। तुम साधन कर रहे हो। वह तो नहीं कर रहा है। तुम में संयम होना चाहिये। जिस तरह खाना खाकर उसे पचा लेते हो, उसी तरह इसे भी पचाते चलो ताकि शक्ति आती चले और तुम बलवान हो जाओ।

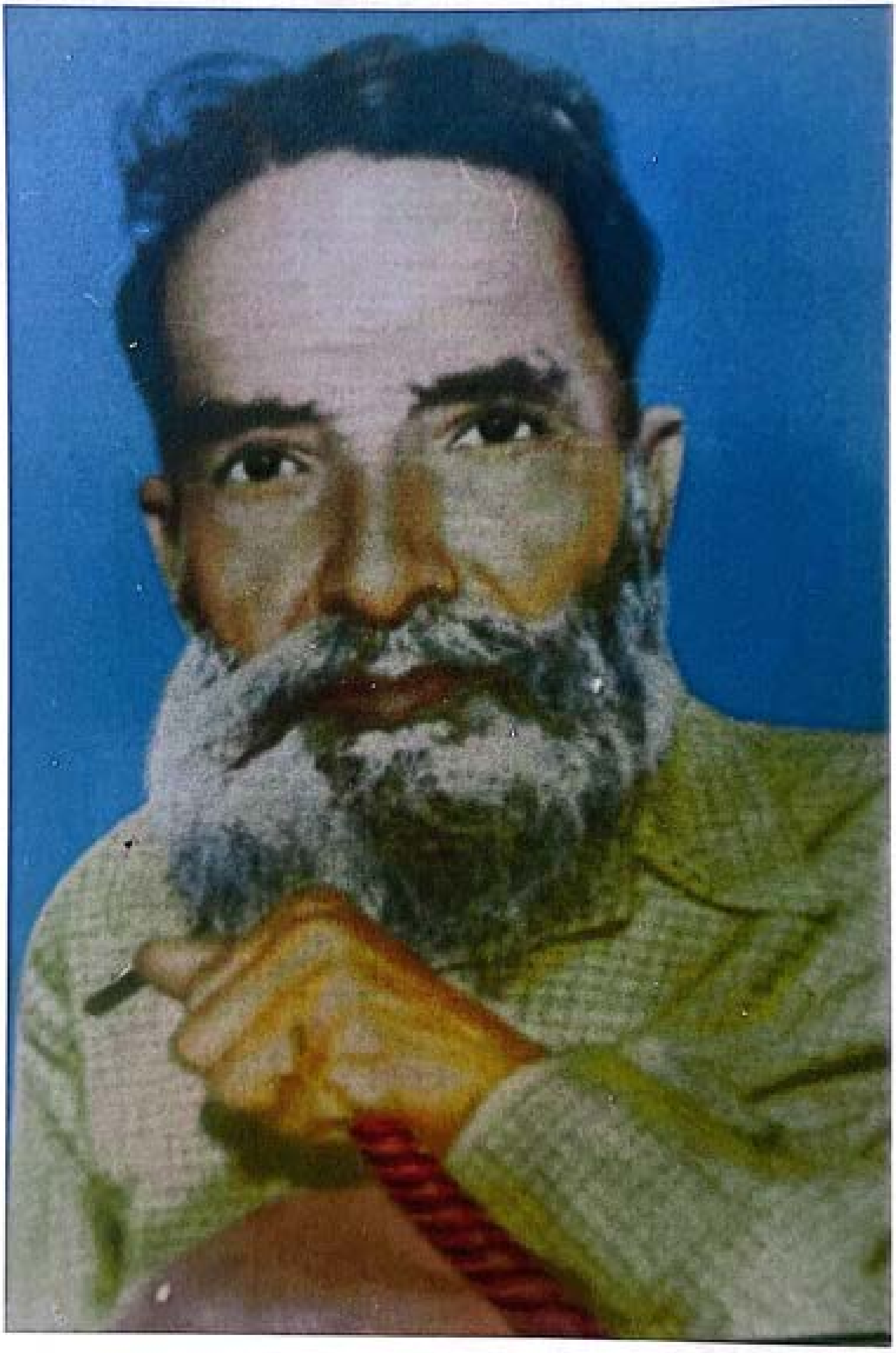
इसी प्रकार और भी कई विघ्न बताये जा सकते हैं मगर विषय लम्बा नहीं करना है। अभ्यासी अगर अपने निजी अनुभव से लाभ प्राप्त करके सँभला हुआ रहे तो उसको लाभ होगा और यदि व्यर्थ बातों में पड़ गया तो फिर वह अपनी हानि आप ही करेगा। चाहे फिर अभ्यास करके सँभल जाये मगर पछड़ जायगा। और भी इसी तरह समझलो।

पापी कौन है ? वह जो पतित हो गया। अपना स्वरूप छोड़ कर जिसकी सुरत (आत्मिक धार) इन्द्रियों के स्थान पर आ गई और वहीं का चक्कर लगाने लगी । यदि किसी को अपने पतित होने का भान हो गया और वह इसे दूर करना चाहता है तो गुरु (साधन सम्पन्न पुरुष) के पास जाय।

Data dayal's wrote:

मैं पतित ठहरा तभी, तू भी पतित पावन बना ॥
डूबा भवसागर में मैं, तब तू तरन तारन बना ॥
जो न होता जग में रावण, कैसे आते रामचन्द्र।
कंस ने प्रगट किया, मथुरा में कृष्णचन्द्र कंद ॥
जो सुखी हैं उनको तेरे, नाम की चाहत नहीं।
जो भले हैं उनको तेरे, काम की हाजत नहीं ॥
पाप जब मैंने किया, तब तू हुआ परगट यहाँ।
मैं न करता पाप तुझको, जानता कोई कहां ॥
पापियों के तारने वाले, हमारा ध्यान कर।
करते हैं सब हम से घृणा, हमको पापी जान कर ॥
अच्छे लोगो भागते हो, क्यों हमारे नाम से।
कैसे कतरा कर चले हो, तुम हमारे काम से ॥
ज्ञान का अज्ञानियों ही को सदा अधिकार है।

पापियों ही के लिये जग, संत का अवतार है ॥
सुख के सिर पत्थर पड़े, सुख ने भुलाया नाम को ।
दुख को बलिहारी है, दुख ही ने जपाया नाम को ॥
मेरे दाता दीन और, दुखियों की तुझको लाज है ।
दीनबन्धो दीन हित, करना ही तेरा काज है ॥
अपनी निन्दा क्या करें, निन्दा के हम कब पात्र हैं ।
सच्चे अधिकारी दया के, जग के पापी मात्र हैं ॥
पाप ही दर्शन दिलाते हैं, तेरा संसार को ।
द्वन्द्व में हमको फंसाया, और पापी कर दिया ।
मनका बरतन वासनाओं से, हमारा भर दिया ॥
सारे पापी तर गये, आई है अब बारी मेरी ।
देखता हूं राह व्याकुलता से, आने की तेरी ॥
तर गये गणिका अजामिल, मुक्त शबरी भीलनी।
तर गये सैना सदन तक, अरु सुपच चंडाल भी ॥
मेरी बारी पर बता अब, देर क्यों करने लगा ।
इस अधम को तार दे, यह दुख से अब मरने लगा ॥
ऐ पतित पावन! पतित की ओर दृष्टि हो तेरी ।
ऐ तरन तारन! नहीं होती है क्यों चिन्ता मेरी ॥
राधास्वामी अब दया से, मेरा बेड़ा पार कर ।
दुख सहा करता हूं निश दिन, आके तू उद्धार कर ॥



राधासवामी

धुन २० (४३-३५५)

नन्दू माया की निन्दा नहीं करना ।।टेक।।

माया अगुन सगुन की खानी, निराकार साकारा ।
माया चेतन जड़ की सूरत, माया ब्रह्म पसारा ।। नहीं करना०
माया रोक थाम है प्यारे, माया सिद्धि शक्ति ।
माया जोग जुगत व्यौहारा, माया प्रेम और भक्ति ।। ,,
माया बुद्धि बिवेक जगत में, माया सत सत ज्ञाना ।
माया जप तप संयम क्रिया, माया सुमिरन ध्याना ।। ,,
माया अन्त आदि है सबकी, माया मध्य की बासी ।
त्रिगुनात्मक माया को जीते, तब हो पुरुष अविनासी ।। ,,
माया पारबती सावित्री, माया लक्ष्मी मूरत ।
माया काली कराल बिकराली, माया सारद सूरत ।। ,,
माया बिन कोई रहे न जग में, माया पाले पोसे ।
कैसा मूरख है वह प्राणी, नित उठ माया जो कोसे ।। ,,
माया बनी सहाई सबकी, करतब करम सिखाये ।
धरम मरम की राह दिखाकर, सत्तलोक पहुँचावे ।। ,,
करनी करो तो रहनी आवे, रहनी अनुभव जागे ।
नन्दू गुरु सेवा में रह कर, और वस्तु नहीं मांगे ।। ,,
राधास्वामी मन में आकर, कोई यथार्थ गति बूझे ।
करनी की जब करे कमाई, सार तत्व तब सूझे ।। ,,

Data Dayal Shiv Brat Lal Ji illuminate the issue of mind in the following shabads:

अरे मन तेरी गति है न्यारी ॥ टेक ॥
पल में मरे पल ही में जीवे, पल पल होत विकारी ।
पल में दाता दानी ठैरे, पल में सहज भिकारी ॥ अरे मन०
डोले गगन मंडल में छण छण, छण में जाये पताला ।
छण में दीन दुखी हो जावे, छण ही में प्रतिपाला ॥ ,,
साधक बन बन मांहि लुकाना, गुफा रुचे है न्यारी ।
बन को तज बस्ती जब आवे, तब मन है घरबारी । ,,
धर बहुरूप दिखावे लीला, अपरम्पार अपारा ।
नाना रंग तरंग बहे नित, गंग जमुन की धारा ॥ ,,
जो कोई याके फंद फँसाना, सौ सौ नाच नचावे ।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, गुरु बल मन बस आवे ॥ अरे मन

मन की अकथ कहानी साधु, मन की अकथ कहानी ॥ टेक ॥
मन में दुख सुख सभी भरे है, मन है भव की खानी ।
मन ही पितृ और देवियां हैं, मन है पद निरवानी ॥ साधु०
मन है दुखी रंक विपरीती, मन राजा मन रानी ।
मन योगी और मन संसारी, मन ज्ञाता मन ज्ञानी ॥साधु०
मन ही से उपजी सकल वासना, करम बचन और बानी ।
मन आकाश और पवन अग्नि है, मन पृथवी मन पानी ॥साधु०
गगन चढ़े मन अधर बिराजे, लखे विचित्र निशानी ।
गिरे पताल समन्दर डूबे, काम क्रोध मद सानी ॥ साधु०
कर सतसंग साधु की सेवा, ताके गुन पहचानी ।
राधास्वामी गुरु की दया मेहर से, कछुक मरम हम जानी ॥साधु०

सब मन की प्रभुताई साधु, सब मन की प्रभुताई ॥टेक।
मन ही आवे गर्भ बास में, जननी गोद खिलाई ।
मन ही धरे किशोर अवस्था, मन ही में तरुणाई ॥ साधु०
मन ही नारी संग भरमाना, विषय भोग लिपटाई ।
मन ही सुत बनिता उपजावे, मन व्यौहार कराई ॥ साधु०
वृद्ध अवस्था मन ही जो व्यापे, भई आलस कदराई ।
मन नहीं मरे मार सब डारे, चिता की आग जराई ॥ ,,
मन ही भजन ध्यान मन सुमिरन, मन ही बुद्धि रहाई ।
काम क्रोध मद लोभ फँसाना, मन में मान बड़ाई ॥ ,,
मन का रूप लखे नहिं कोई, मन सब खेल खिलाई ।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, मन का भेद जनाई ॥ साधु०

मन से होजा न्यारा साधू, मन से होजा न्यारा ॥टेक॥
मन से बीज बीज से अंकुर, अंकुर फूले फूला ।
फूल से फल फल मीठा लागा, मीठ मीठ प्रतिकूला ॥ साधू०
मन ब्रह्मा मन विष्णु महेशा, मन माया का रूपा ।
जो कोई मन के बंध बँधाने, सो बूड़े भव कूपा ॥ ,,
देखे अनदेखे को देखें, लेख अलेख विचारा ।
जिये मरे मर मर फिर जीवे, आवागवन मँझारा ॥ ,,
नजर न आवे अगम कहावे, मन काहू नहिं देखा ।
जो कोई देख बिचारे मनको, सूझ परे तब लेखा ॥ ,,
दूर से दूर निकट रह सबके, घेरे पास न आवे ।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, अब मन मोहि न सतावे ॥ ,,

A particular shabad that data dayal wrote for baba faqir to tell him the nature of true guru. Satguru is within us – our own self (the ansh of God) is Satguru.

गुरु हैं तेरे पास फकीरवा, गुरु हैं तेरे पास ।।टेक।।
त्याग भरम विचार मन का, छोड़ जग की आस ।
आस कर एक गुरु चरन की, सब से होय निरास ।। फकीरवा
तेरे मन में तेरे तन में, तेरे साँसो सांस ।
गुरु बसें दिन रात प्यारे, धर चरन विश्वास ।। फकीरवा
गुरु नहीं तीरथ बरत में, गुरु न योग अभ्यास ।
ढूँढ़ अपने हृदय में नित, वहां उनका बास ।। फकीरवा
करम में माया है व्यापी, धरम यम की फांस ।
बन में अनबन देखी मन में, भरम था सन्यास ।। फकीरवा०
तेरी चिंता गुरु को होगी, क्यों है तुझको त्रास ।
राधास्वामी चरन गह, अज्ञान का कर नास ।। फकीरवा०

जब लग बालक गिरे नहीं, तब लग उठे न जान ।
जब लग अज्ञानी नहीं, कैसे पावे ज्ञान ॥१॥
नन्दू पाप कमाय कर, आ सतगुरु के पास ।
पुन्य मिले सतसंग से, क्यों तू होय उदास ॥२॥
नन्दू पाप कमाय कर, ली सतगुरु की ओट ।
सकल पाप जल भुन गये, भाग गया सब खोट ॥३॥
पाप किया तो क्या भया, पाप पुन्य का बीज ।
बिना पाप कहो पुन्य क्या, हाथ न दुख का मीज ॥४॥
नन्दू गुरु बिन नहीं लखी, पाप पुन्य की बात ।
राधास्वामी की दया, समझ पड़ी जम घात ॥५॥
नन्दू माया जग ठगे, ठगनी अति बलिबान ।
इस ठगनी के मरम को, समझे साध सुजान ॥६॥
माया ने तुमको ठगा, ठगो उसे तुम आय ।
आँख मिचोली खेलकर, लो अब काम बनाय ॥७॥
माया बुद्धि विवेक है, माया है गुनवान ।
माया शक्ति सिद्धि है, माया है बलवान ॥८॥
माया से मिल बुद्धि ले, माया ही से विवेक ।
पहिले खेल अनेक से, पीछे एक ही टेक ॥९॥
एक नाम गुरु देव का, सतगुरु दिया बताय ।
नन्दू सोच बिचार कर, राधास्वामी पद लपटाय ॥१०॥

शरणागतम, शरणागतम, शरणागतम

इस वास्ते मैं इस परिणाम पर आया हूं कि असली घर जाना जो है या जो शब्द में जाना है यह अपने बस में नहीं है। कोशिश करना हमारा फर्ज है। मैं यह कहूंगा कि "जिस पर दया आद कर्ता की वह यह नेहमत पाये,, सच्ची बात तो यह है। जब मैं देखता हूं कि मैं खुद गिर जाता हूं तो मैं कैसे आशा करूं कि तुम न गिरोगे। तो मुझे यह समझ में आया कि जिस पर उसकी दया है वह यह नेहमत पाता है। सत्संग शुरू करने से पहले मैंने कहा

होएगी मंजिल तेरी पार
गुरु से करले दृढ़ कर प्यार ।

गुरु के चरन पकड़ यह सार,
इन्द्री भोग भुलावत झाड़ ॥

सतगुरु शब्द स्वरूपी राधास्वामी दयाल और उनके चरनप्रकाश हैं।

बन्दनम् सत ज्ञान दाता, बन्दनम् सत ज्ञान मय।
बन्दनम् निर्वाण राता, बन्दनम् निर्वाण मय॥
भक्ति मुक्ति योग युक्ति, आप के आधीन सब।
आप ही हैं सिंध सद्गति. जीव जन्तु मीन सब॥
आप गुरु सतगुरु दया, और प्रेम के भण्डार हैं।
आप करता धरता हैं, करतार जगदाधार हैं॥
ऋद्धि सिद्धि शक्ति नवनिधि, हैं चरन में आपके।
बच गया भव दुख से, जो गया शरण में आपके॥
भक्ति दीजे नाम की, सतनाम में विश्राम दे।
राधास्वामी अपना कीजे, राधास्वामी धाम दे॥

पिला दे भक्ति का ऐसा प्याला, ममत्व मैं अपने मन का खोदूँ।
न बुधि रहे और न सुधि रहे कुछ, अहंपना सारा मनका खोदूँ॥टेक॥ पि०
जपूँ तपूँ और भजूँ न सुमिरूँ, न योग युक्ति के पन्थ दौड़ूँ।
न नाम की माला हाथ में हो, हिये की माला का मनका खोदूँ॥ पि०
वह राग क्या जिसमें राग आये, वह त्याग क्या त्याग में फँसाये।
न बन्ध और मुक्ति का हो खटका, विवेक घर और बन का खोदूँ॥ ,,
न दुख की दुविधा न सुख की चिंता, न चित की दुचिता का भय हो किंचित।
न ज्ञान और ध्यान की हो इच्छा, विचार साधन यतन का खोदूँ॥ ,,
न द्वन्द निरद्वन्द का हो झगड़ा, न द्वैत अद्वैत का हो बखेड़ा।
झुका के सिर राधास्वामी पद में, विचार तक दास पन का खोदूँ॥ ,,

ने होने या व्यक्तित्व का ...

मैं पना जाता रहा, जब तू पना भी दूर है।
मिटगया 'मैं' 'तू' का झगड़ा, कशमकश काफूर है॥
न आनन्द है न विचार है, न कर्म धर्म और ज्ञान है।
न सुख न दुख न क्लेश कुछ, न जान है न बे जान है॥
खुदा नहीं, खुदाई नहीं जहाँ एक तत्व प्रधान है।
आप अपने आप में है वह, तब वहाँ निर्माण है॥
आप ... होगा जब

साधो अमर लोक निज देशा॥
वहाँ नहिं काया नहिं वहां माया, नाहीं कोई प्रकाशा।
वह है देश हमारा साधो, हमने जाकर देखा॥
हम हैं ला मकानी ला बयानी, आदि अन्त के पारा।
गुरू ने दया करी है हम पर, पाय गये तत सारा॥
जग को आये चितावन भाई, कह कह अनुभव अपना।
यह जग खेल खिलाड़ी का है, यहां कोई नहीं अपना॥

लब खुले और बन्द हुये,
यह राज़े जिन्दगानी है ।

इस से आगे का पता किसी को नहीं लगा ।

नहीं खालिक मखलूक न खलकत ।
करता कारण काज न दिक्कत ॥
द्रष्टा दृष्टि नहिं कुछ दरसत ।
वाच्य लक्ष नहीं पद न पदारथ ॥
जात सफात न अव्वल आखिर ।
गुप्त न परगट बातिन जाहिर ॥
राम रहीम करीम न केशो ।
नहिं कुछ नहिं कुछ नहिं कुछ था सो ॥
स्मृति शास्त्र न गीता भागवत् ।
कथा पुराण न वक्ता कीरत ॥
सेवक सेव न दास न स्वामी ।
नहिं सतनाम न नाम अनामी ॥
कहाँ लग कहूँ नही था कोई ।
चार लोक रचना नहिं होई ॥
जो कुछ था सो अब कह भाखूं ।
उनमुन सुन विसमाधी राखूं ॥
हैरत हैरत हैरत होई ।
हैरत रूप धरा इक सोई ॥
उनमन रूप सदा वह धरता ।
उनमुन दशा सदा वहि बरता ॥

सब कुछ समाप्त हो जाता है। जो ऐसा कहता है कि मालिक ऐसा है, ऐसा है, वह अपने मन को खुदा कहता है। असली मालिक तो जात और परम तत्व है, आधार, कूटस्थ है। वह क्या है? किसी को कोई पता नहीं। उसकी लीला कोई नहीं जानता :—

तू प्रकाश है तू परछाई, तू है परम तत्व तू झांई।
कैसे अस्तुति करू गोसांई, सुध बुध भरम लई॥

कहते हैं कि तेरी स्तुति मुझसे नहीं हो सकती, असम्भव है। तू आधार है तू सब कुछ है। तेरे सम्बन्ध में कोई क्या कहे।

सुरत हुई अति कर मगनानी,
पुरुष अनामी जाए समानी।

न मैं, न तू, न गुरु न चेला, न कर्म न धर्म, न जप न तप, सब समाप्त हो जाए।

मुक्त न वह न शुद्ध अशुद्ध,
ज्ञानी बढ़ वकता बढ़ बुद्ध,
निरबुद्धि नही बुद्धिमान,
किस विध तिसका करूं बखान।

उसका न कोई रूप है न रेखा, वो है सुरत, वो ही सुरत सब कुछ करती है यह तो उन्होंने बतला दिया कि सुरत सब कुछ करती है मगर यह नहीं बताया कि तुम इस अवस्था को कैसे प्राप्त कर सकते हो।

मन के सारे खेलों को छोड़ कर प्रकाश और शब्द में रहने से भी तुमको वह अवस्था नहीं मिल सकती क्योंकि प्रकाश और शब्द में अपनी हस्ती का "है पना" मौजूद रहता है जब तक व्यक्ति उस वस्तु की तरफ नहीं जाता जो प्रकाश को देखती है और शब्द को सुनती है उसको उस अवस्था का जिसका यहां वर्णन ऊपर आया है अनुभव नहीं हो सकता और उसको अनुभव भी तब होगा जब सच्ची जिज्ञासा होगी वरना नहीं। इसलिए स्वामी जी महाराज ने कहा है—

सूरत शब्द दोऊ अनुभव रूपा,
तू तो पड़ा भ्रम के कूपा

कठिन है क्योंकि मन में जो सांसारिक वासनाएं हैं वो आगे जाने नहीं देती। अगर आदमी इन इच्छाओं को छोड़ दे तो वह वहां तक पहुंच सकता है। इसलिए साधन की आवश्यकता है और यह पांच नाम इसीलिए दिए जाते हैं कि सुमिरन ध्यान करते रहो, और जीवन खुशी से गुजारो और फिर समय आने पर तुम्हारी इच्छा के अनुसार प्रकृति आगे जाने का प्रबन्ध करेगी। पांच नाम सांसारिक जीवन को सुखदायी बनाने के लिए है, असली वस्तु है निज नाम।

बिन कर कर्म करे व्यवहारा,
बिन पग चलै सौ कोस हजारा।
बिना नैन का दृष्टा भाई,
नाक बिना सूंघे सब आई।
बिन जिभ्या बानी बहु गावे,
बिन जिभ्या स्वाद रस खावे।
बिना कान श्रोता सज्ञानी,
बिना मान के मान अभिमानी।
बिना देह के देहाधारी,
बिन अकार के सोई साकारी।

बिना रूप का रूप है, बिन अकार साकार।
निराधार आधार जग सब विधि किया विचार॥

न कोई बुरा है न कोई भला है।
बुरे में वह खुद हैं भले में वह खुद है ॥
यह काल और माया सभी आप खुद है।
जीव वही ब्रह्म वही ज़ात वह खुद है ॥
क्यों हम बन कर नादान उसको ढूंढ़ें।
जब ढूंढ़ वही और मुतलाशी भी खुद है ॥
यहां आकर चुप होकर हूं कहता।
न कहना है न सुनना है नहीं और कुछ है।
जो है वह है ऐ मेरे जैसे ही दीवानो।
मैं भी वह खुद है और तू भी खुद है ॥

मंगलम् अशब्द अरूप,
शब्द रूप स्वामी ।
मंगलम् अलख अनाम,
अगम नाम नामी ॥
मंगलम् ऐ दीन बन्धो,
दीना नाथ दाता ॥

मंगलम् अभेद भेद,
आनन्द घन ज्ञाता ॥
महिमा अनन्त आदि अन्त,
कौन गावे ।
भेद तेरा कौन जाने,
कौन कह सुनावे ॥
सन्त भेष प्रगट जक्त,
जीव को चेताया ।
काल कर्म फन्द काट,
धुर ले पहुँचाया ॥

शब्द

किस मुख से तेरी महिमा गाऊं,
तू सन्त पुरुष अविनाशी है ।
अलख धन अमल विमल निर्मल,
सत सदन परम सुखरासी है ।।
कोई अगुन कहे कोई सगुन कहे,
कोई निराकार साकार कहे ।
तू सब कुछ है और कुछ भी नहीं,
धुरपद धुर धाम निवासी है ।।
नहीं मन ने थाह कभी पाई,
नहीं बुद्धि में आई चतुराई ।
चित चिन्तन कैसे करें तेरा,
तू द्वैत अद्वैत प्रकाशी है ।।
मन बना विहंगम मीन मकर,
मरकट बनकर कूदा अन्दर ।
चींटी की चाल चला घट में,
कह उठा तू अगम उदासी है ।।
राधा स्वामी रूप से प्रकट हुआ,
दर्शन देकर कृतार्थ किया ।
निज शब्द से अपना भेद दिया,
घट अघट का सत्य निवासी है ।।

"सतगुरु प्यारे ने लखाया, निज रुप अपारा हो,
हद, हद सब मत में गावें, वेहद रूप संत दखावें,
माया घेर के पारा हो।
रूप अरूप का भेद सुनावें, मायक रुप स्थिर न रखावे,
वो निज रूप नियारा हो।
सन्तन निर्मल देस जनाया, जहां नहीं काल करम और माया,
वो पद सार का सारा हो।
सत्त पुरुष जहं सदा विराजें, हंस मंडली अदभुत राजें,
करते प्रेम प्यारा हो।
जिन २ यहं गुरु भक्ति धारी, सो पहुंचे सतगुरु दरबारी,
राधास्वामी चरण निहारा हो।
सन्तन का भगवन्त अविशनी, भेद भक्ति जहं वहं प्रकाशी,
सत्तपुरुष दरबारा हो।
राधास्वामी धाम अनाम अपारा, जहं नहीं रंग रुप आकारा,
अभेद भक्ति जहं धारा हो।

या विधि जो कोई कार कमावे, पिरथम गुरु भक्ति चित लावे,
जग से हो जाये निआरा हो।
अन्तर सतगुरु भक्ति साधे, सुरत शब्द मारग आराधे,
सोई जाये भौ पारा हो।
सतपुरुष का दरशन पावे, वहं राधास्वामी चरन समावे,
येही सत्तधारा हो।
और मते सब काल पसारे, माया के कोई जाय न पारे,
करम भरम पचहारा हो।
जो चाहो सच्चा उद्धारा, राधास्वामी मत धारो यह सारा
बारम्बार पुकारा हो।
राधास्वामी !

यही हैं ठगिया करत ठगार,
कहैं राधा स्वामी तोहि पुकार।
शरन में आजा लेउं सम्हार,
नाम संग होजा होत उधार॥

कह दिया। दाता ने कहा था Silence in the begining and Silence in the end, वह बे अन्त है। न वहां मैं है न तू है। शब्द है :—

सखिया वा घर सब से न्यारा।
जहां पूरण पुरुष हमारा।
जहां नहीं सुख दु:ख
सांच झूठ नहिं पाप न पुन्न पसारा।
नहिं दिन रैन चन्द नहिं सूरज
बिना ज्योति उजियारा।
नहिं तहां ज्ञान ध्यान नहीं जप तप
वेद कतेब न बाणी।
करनी धरनी रहनी गहनी
ये सब वहां हिरानी।
घर नहिं अधर न बाहर भीतर
पिंड ब्रह्मण्ड कछु नाहीं।
पांच तत्व गुण तीन नहिं तहं।
साखी शब्द न ताहीं।
मूल न फूल बेलि नहिं बीजा
बिना वृक्ष फल सोहे।
ओअं सोहंग अर्ध उर्ध नहिं
स्वांसा लेख न कोहे।

नहिं निर्गुण नहिं सगुण भाई
नहिं सूक्ष्म अस्थूलं ।

नहीं अक्षर नहिं अविगत भाई,
ये सब जग के भूलं ।

जहां पुरुष तहवां कछु नाहीं
कहे कबीर हम जाना ।

हमरी सैन लखै जो कोई
पावै पद निर्वाना ।

है ? आदमी जाय तो कहां जाय ? क्या उसके बचने की कोई सूरत है ? हां है, वह है मन के चक्कर से निकल जाना। जो मन के चक्कर से निकला हो वही इसको जान सकता है और नहीं। इसका मुझे भी अनुभव तब हुआ जब मैं मन से आगे गया हूं। वहां क्या है ? वहां न कर्म इन्द्रियां हैं न ज्ञान इन्द्रियां हैं ? वहां तो केवल हमारा अपना आप है।

कहूं उस देश की बतियां,
जहां नहीं होत दिन रतियां।

नहीं रवि चन्द और तारा,
नहीं उजियार अन्धियारा।

नहीं तहां पवन और पानी,
गये वह देस जिन जानी।
नहीं तहां धरनि आकाशा,
करें कोई सन्त तहां वासा॥

दुःख दारू सुख रोग भया।

मैं सोचता हूँ वह देश है ?

सोहंग नाद नहीं भाई,
न बाजे शंख शहनाई।
निः अक्षर जाप तहां जापे।
उठत धुन सुन्न से आपे।
मन्दिर में दीप बड़भारी,
नैंन बिन भई अन्धियारी।
कबीरा देश है न्यारा,
लखे कोई नाम का प्यारा।

Ekonkar Sat Naam Karta Purakh Nirbhau Nirvair Akal Murat
<u>Ajuni</u> Saibhang Gurparsad (Jap Ji)

Roop na rekh na rang kichh trihu goon te Prabh bhin
Tise bujhaye Nanaka jis hove so parsan (Sukhmani)

Tudh roop na rekhiya jaat tu verna bahra
Eh manas jaane door tu verte zahra (Vaar Maaru M:5 Pauri)

Chakar chehan er bern jaat er paat nahin jih
Roop rang er rekh bhekh kouoo keh na sakat kih (Jaap Sahib)

Kavan guru kavan mat wela. Tera kavan guru jis ka tu chela
Pavan aranbh Satgur mat wela. <u>Sabad</u> Guru surat dhun chela
(Sidh Goshat)

Aape Sabad aape nishan. Aape surta aape jaan (Bilawal M:1)